

卐 श्रीमद्राघवो विजयते 卐

धर्मचक्रवर्ती, महामहोपाध्याय, जीवनपर्यन्त कुलाधिपति, वाचस्पति, महाकवि
श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज
का राष्ट्रीय, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना का संवाहक

श्रीतुलसीपीठसौरभ

(मासिक पत्र)

सीतारामपदाम्बुजभक्तिं भारतभविष्यं जनतैक्यम्।
वितरतु दिशिदिशि शान्तिं श्रीतुलसीपीठसौरभं भव्यम्॥

वर्ष १३	मई २००९ (४, ५ जून को प्रेषित)	अंक-९
संस्थापक-संरक्षक श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज संरक्षक एवं प्रकाशक डॉ० कु० गीता देवी (पूज्या बुआ जी) प्रबन्धन्यासी, श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट सम्पादक आचार्य दिवाकर शर्मा 220 के, रामनगर, गाजियाबाद-201001 दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545 सहसम्पादक डा० सुरेन्द्र शर्मा 'सुशील' डी-255, गोविन्दपुरम्, गाजियाबाद-201001 दूरभाष : 0120-2767255, मो०-09868932755 प्रबन्ध सम्पादक श्री ललिता प्रसाद बड़धवाल सी-295, लोहियानगर, गाजियाबाद-201001 0120-2756891, मो०- 09810949921 सहयोगी मण्डल (ये सभी पद अवैतनिक हैं) डा० श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव, 09971149779 श्री दिनेश कुमार गौतम, 09868977989 श्री सत्येन्द्र शर्मा एडवोकेट, 09810719379 श्री अरविन्द गर्ग सी.ए., 09810131338 श्री सर्वेश कुमार गर्ग, 09810025852 डॉ० देवकराम शर्मा, 09811032029	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के सम्पर्क सूत्र : श्रीतुलसीपीठ, आमोदवन, पो० नया गाँव श्रीचित्रकूटधाम (सतना) म०प्र०485331 0-07670-265478, 05198- 224413 वसिष्ठायनम् - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य मार्ग रानी गली नं०-1, भूपतवाला, हरिद्वार (उत्तरांचल) दूरभाष-01334-260323 श्री गीता ज्ञान मन्दिर भक्तिनगर सर्कल, राजकोट (गुजरात) दूरभाष-0281-2364465 पंजीकृत सम्पादकीय कार्यालय एवं पत्र व्यवहार का पता आचार्य दिवाकर शर्मा, 220 के., रामनगर, गाजियाबाद-201001 दूरभाष-0120-2712786, मो०- 09971527545	

रामानन्दः स्वयं रामः प्रादुर्भूतो महीतले

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
१.	सम्पादकीय	-	३
२.	वाल्मीकिरामायण सुधा (४९)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	४
३.	श्रीमद्भगवद्गीता (८०)	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	८
४.	श्रीनैमिषारण्यतीर्थ का महत्व	श्री आशीष शास्त्री	१०
५.	पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम	प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी	११
६.	श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में १००८....	-	१२
७.	वसिष्ठायनम् बिहारी श्रीराधागोविन्द	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१३
८.	रूठे हुए भक्त को भगवान का मनाना	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१५
९.	सत्सङ्ग की अद्भुत महिमा	पूज्यपाद जगद्गुरु जी	१७
१०.	मानसोक्त विप्रनिष्ठा की शास्त्रीयता	मानसमृगेन्द्र डॉ० ब्रजेश दीक्षित	१८
११.	गोसेवा करिये और राष्ट्र को.....	श्रीजगदीश प्रसाद गुप्त	२२
१२.	शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य	पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत	२६
१३.	धर्मशास्त्रों में आचरणीय सूक्तियाँ	प्रस्तुति-आचार्य चन्द्रदत्त 'सुवेदी'	२८
१४.	व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक	-	३२

सुधी पाठकों से विनम्र निवेदन

१. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' का प्रत्येक अंक प्रत्येक दशा और परिस्थिति में प्रत्येक महीने की ४ तथा ५ तारीख को डाक से प्रेषित किया जाता है। पत्रिका में छपे महीने का अंक आगामी महीने में ही आपको प्राप्त होगा।
२. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' मंगाने हेतु बैंक ड्राफ्ट 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' के नाम से ही बनवाएँ तथा प्रेषित लिफाफे के ऊपर हमारा नाम तथा पूरा पता स्पष्ट अक्षरों में लिखें। मनीआर्डर पर हमारा नाम-पता ही लिखें प्रधान सम्पादक अथवा प्रबन्ध सम्पादक कभी न लिखें।
३. पत्रव्यवहार करते समय अथवा ड्राफ्ट-मनीआर्डर भेजते समय अपनी वह ग्राहक संख्या अवश्य लिखें जो पत्रिका के लिफाफे के ऊपर आपके नाम से पहले लिखी है।
४. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' से अभिप्राय धर्मचक्रवर्ती श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज समझा जाए।
५. 'श्रीतुलसीपीठ सौरभ' में प्रकाशित लेख/कविता/अथवा अन्य सामग्री के लिए लेखक/कवि अथवा प्रेषक महानुभाव ही उत्तरदायी होंगे, सम्पादक मण्डल नहीं।
६. 'श्रीतुलसीपीठसौरभ' प्राप्त न होने पर हमें पत्र लिखें अथवा फोन करें। हम यद्यपि दूसरी बार पुनः भेजेंगे। किन्तु अपने डाकखाने से भलीप्रकार पूछताछ करके ही हमें सूचित करें।
७. डाक की घोर अव्यवस्था के चलते हमें दोषी न समझें। हमें और आपको इसी परिस्थिति में 'पूज्यपाद जगद्गुरु जी' का कृपा प्रसाद शिरोधार्य करना है।
८. सुधी पाठक अपने लेख/कविता आदि स्पष्ट अक्षरों में लिखकर भेजें। यथासमय-यथासम्भव हम प्रकाशित करेंगे। अप्रकाशित लेखों को लौटाने की हमारी व्यवस्था नहीं है।

सदस्यता सहयोग राशि

संरक्षक	११,०००/-
आजीवन	५,१००/-
पन्द्रह वर्षीय	१,०००/-
वार्षिक	१००/-

-सम्पादकमण्डल

श्रीतुलसीपीठ सेवान्यास, चित्रकूट के स्वामित्व में मुद्रक तथा प्रकाशक डॉ० कु० गीतादेवी (प्रबन्धन्यासी) ने श्री राघव प्रिंटर्स, जी-१७ तिरुपति प्लाजा, बेगम पुल रोड, बच्चापार्क, मेरठ, फोन (का०) 4002639, मो०-9319974969, से मुद्रित कराकर कार्यालय २२० के., रामनगर, गाजियाबाद से प्रकाशित किया।

सम्पादकीय-

गंगा प्रदूषित करना महापाप है

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड नायक परिपूर्णतम परमपिता परमेश्वर करुणा ही पृथ्वी पर भगवती रिङ्गुतुङ्गतरङ्गा गंगा बनकर प्रवाहित हो रही है। आसेतु हिमाचल अहर्निश प्रवहमान पतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी गंगा अनन्तानन्तप्राणियों के पाप ताप परिताप को धोकर निर्मल बनाने का अद्वितीय कार्य करती हैं। इस गंगा मैया की जीवमात्र पर कितनी अनुकम्पा है कि भगवान् के श्रीचरणों का निरन्तर सान्निध्य प्राप्त करने वाली होने पर भी इसने जीवमात्र के कल्याण के लिए भगवान् के श्रीचरणों को छोड़ा, हिमाद्रि प्रदेश की गहन गुफाओं को तोड़ा तथा जीवात्मा को परमात्मा के प्रेमानन्द से जोड़ा। स्वयं अत्यन्त दुरूह स्थानों में कष्ट का अनुभव करती हुई भी यह गंगा जनमानस का उद्धार करने के लिए भूलोक पर प्रवाहित है। इसका जल जल नहीं अमृत है, ब्रह्मद्रव है, परमौषध है। इसी गंगा के किनारे अनन्तानन्त ऋषि-मुनियों तथा साधकों ने घनघोर तपस्या-नमस्या और परिव्रज्य करके अक्षयपुण्य प्राप्त किए हैं। विविध प्रकार का साहित्य-सृजन तथा वैदिक संस्कृति का लालन पालन इसी गंगा की गोद में पुष्पित पल्लवित हुआ है।

किन्तु आज खेद के साथ लिखना पड़ता है कि मानवता की चादर ओढ़े इस समाज ने इस गंगा का भयंकर अनादर किया है। इस गंगा को प्रदूषित करने का गर्हणीय कार्य वे सब लोग कर रहे हैं जो पुण्य प्राप्ति के लिए गंगा में स्नान भी करते हैं और इसकी रक्षा करने का संकल्प भी दोहराते हैं। दूषित पानी फेंकने वाली असंख्य फैक्ट्रियों के मालिक जहाँ ऐसा जघन्य कार्य कर रहे हैं वहीं अर्द्धदग्ध (आधा जला हुआ) देह को गंगा में धकेल देने वाले असंख्य लोग इसी गंगा में अपने सम्बन्धी के गतात्मा की और अपने कल्याण की कामना करते देखे जाते हैं। सन्तोष की बात है कि विगत दिनों सरकार द्वारा इस ओर ध्यान देने के लिए आयोग/समिति गठित किये गये हैं। योग ऋषि स्वामी रामदेव जी महाराज ने भी इस गंगा का स्वच्छ करने के लिए ऐतिहासिक और उद्घरणिय प्रयास किए हैं।

अस्तु! अपनी कर्तव्य बुद्धि से गंगाशुद्धि के लिए सभी को प्रयास करने चाहिए। साथ ही जो गंगाजल को अपनी जीवनचर्या से जोड़ चुके हैं ऐसे आचार्यों-सन्तों तथा साधकों को गंगा जी का सेवन अर्चन तथा स्तवन निरन्तर करना चाहिए-यही सार्वकालिक आचरण भी है और अनिवार्य कार्य भी।

इसी शृङ्खला में पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज द्वारा प्रणीत 'श्रीगंगामहिम्न स्तोत्र' का एक श्लोक गंगा-भक्तों के आनन्दवर्धन के लिए हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं-

निराकारं केचिद्प्रणिदधतआषर्जितधियो
नराकारं चान्ये प्रणतिरतिधन्ये स्वमनसि।
त्रिभिस्तापैस्तप्ताः पुनरथ परं केचन वयं
सदानीराकारं सुरनदि भजामस्तव पदम्॥

आचार्य दिवाकर शर्मा
प्रधान सम्पादक

वाल्मीकिरामायण सुधा (४९)

(गतांक से आगे)

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

यह संसार सिनेमा है जो थर्ड क्लास की टिकिट लेते हैं वे बेटे बेटों में चिपककर बैठते हैं परिवार में अधिकाधिक ममता रहती है। यह थर्ड क्लास के टिकिट की फजीहत है। इसके बाद कुछ लोग सैकिण्ड क्लास का टिकिट लेते हैं। थोड़ा सा घर से दूर हो जाते हैं फिर भी घर याद आता रहता है। अवसर मिला तो घर हो आते हैं या पैसा भेज देते हैं। इससे तीसरी श्रेणी का जो टिकिट होता है वह फर्स्ट क्लास का होता है। परिवार और संसार से और दूर हो जाते हैं घर को कभी याद नहीं करते। जो बालकनी में होते हैं वे बच्चे के समान होते हैं वे रहते संसार में हैं पर चिन्तन होता है भगवान का। यह सिनेमा दिखाई पड़ता है जब प्रकाश नहीं होता इसका अर्थ यह है कि जब जीव के मन में अज्ञान आ जाता है तभी वह संसार देखता है यदि ज्ञान हो जाय तो 'सीय राम मय सब जग जानी' तब संसार नहीं दीखता। इण्टरवल में जब प्रकाश हो जाता है तब चित्र न जाने कहाँ चला जाता है अर्थात् दिखाई नहीं पड़ता। इसी प्रकार यदि हृदय में भगवत्तत्त्व का ज्ञान हो जाय तब संसार न जाने कहाँ चला जाता है। तब न कोई पति, न पुत्र तब तो केवल भगवान और भगवान के भक्त ही दिखाई पड़ते हैं। इसमें जो सबसे रोचक पक्ष है जिसका हनुमान जी से सम्बन्ध है वह यह है कि जितना बड़ा पर्दा होता है उतना ही स्पष्ट चित्र दिखता है। इसीलिए लोग टी०वी० छोड़कर हाल में सिनेमा देखने जाते हैं। इसी प्रकार जिसके मन में जितना बड़ा अज्ञान का पर्दा होगा उसको उतना ही अधिक संसार दिखेगा।

एक बात और है इसका जो डाइरेक्टर (संचालक) होता है वह बिल्कुल पीछे होता है दिखता है सबकुछ आगे से पर संचालन होता है पीछे से। तो हनुमान जी कहते हैं सरकार! यह संसार चलचित्र है इसके निर्देशक आप पीछे बैठे रहते हैं तो जब आप पीछे बैठते हैं तो आज हमारी पीठ पर बैठ जाइये। अथवा, हनुमान जी कहते हैं सरकार! आपको पीठ बहुत प्रिय है। क्यों? क्योंकि वामन अवतार में आपने बलि की पीठ नाप ली थी तो जब आप बालि की पीठ लेकर प्रसन्न हो सकते हैं तो आज बजरंगबली स्वेच्छा से अपनी पीठ दे रहा है। अथवा, सरकार! पीठ उसी को दिखाई जाती है जिससे व्यक्ति हार स्वीकार कर लेता है। यदि मैं आपको पीठ दिखा दूँगा तब मैं संसार में अजेय हो जाऊँगा फिर मुझे कोई जीत नहीं सकेगा। अतः आपसे हार मानकर मैं आपको पीठ दिखा रहा हूँ। अथवा, सुना है मृत्यु का निवास पीछे ही होता है तो मैं जब आपको पीठ पर बिठा लूँगा तो मेरी अपमृत्यु नहीं होगी। अथवा, अधर्म भी पीठ पर होता है और आप 'रामो विग्रहवान् धर्मः' हैं अतः मैं आपको पीठ पर बिठा रहा हूँ अब मेरी पीठ पर अधर्म नहीं रहेगा। अथवा, लोगों की कमर टूटती है तो जब मैं आपको पीठ पर बिठा लूँगा तो मेरी कभी कमर नहीं टूटेगी। अथवा, रामरक्षास्तोत्र में भगवान शिव ने सिद्धमंत्र कहा था- 'सुग्रीवेशः कटिं पातु' तो यह तो पहले से ही निर्देश हो चुका है कि कटि की रक्षा सुग्रीव के ईश्वर करेंगे तो मेरी पीठ पर बैठकर सुग्रीव के ईश्वर बनकर मेरी कटि की रक्षा कीजिए। अथवा, आप

सूर्य कुल के सूर्य हैं और सुग्रीव सूर्यनारायण के पुत्र हैं तो आपको सूर्य की भूमिका निभानी पड़ेगी। सूर्यनारायण सुमेरु पर्वत के शिखर पर उदित होते हैं और योग के अनुसार मेरुदण्ड पीठ के पास होता है तो सुमेरु पर्वत पर चढ़ जाइये। सरकार! सूर्यनारायण उदयाचल पर उदित होते हैं उदयाचल सुमेरु पर्वत का शिखर है सुमेरु पर्वत स्वर्ण का है मैं भी स्वर्णपर्वत के समान हूँ 'ततः कंचनशैलाभः' मैं कांचन पर्वत पीठ उदयाचल हूँ क्योंकि जब आप उदयगिरि पर बैठते हैं तो सूर्यनारायण बनते हैं। एक बार मिथिला में सूर्यनारायण बने थे इस बार भी सूर्यनारायण बन जाइये। श्रीराम ने कहा कि यदि मैं सूर्य बनूँ तो लक्ष्मण? हनुमान जी ने कहा तब ये अरुण बन जायेंगे। अथवा, सरकार! पीठ पर बिठाना आवश्यक है क्योंकि पीठ पीछे से कोई घात करता है तो पता नहीं लगता आप पीठ पर रहेंगे तो मेरा कल्याण होगा। सरकार! गरुड़ भी नारायण को पीठ पर बिठाते हैं मैं भी आपको पीठ पर बिठाऊँगा। सरकार! मेरी पीठ पर अवश्य बैठ जाइये पीठ पर बैठाने का हेतु बड़ा अद्भुत है। कारण बहुत स्पष्ट है क्योंकि जब आप मेरी पीठ पर बैठेंगे तो कभी न कभी आपका हाथ मेरी पीठ पर चला जायगा। मैं चाहता हूँ कि मेरे सिरपर आपका हाथ रहे। मेरा मन है कि बालि और सुग्रीव आपको राजा कहेंगे। आगे चलकर आप सुग्रीव का अभिषेक करेंगे तब राजा का किया हुआ अभिषेक माना जाता है। राजा की प्रामाणिकता क्या है?

गजेन महता यान्तं रामं छत्रावृताननम्

अयोध्याकाण्ड में कहा गया कि हम देखना चाहते हैं कि राम जी हाथी पर बैठकर गये हैं और छत्र उनके ऊपर लटका हुआ है। आपको मैं राजा बनकर प्रस्तुत कर रहा हूँ। राजा को हाथी चाहिए

और मैं हाथी बनूँगा और छत्र क्या होगा? मेरी पूँछ जो है वही आपका छत्र बनेगा। सरकार! राजा और आचार्य ये दोनों कभी बिना पादुका पीठ के नहीं जाते। आप राजा हैं और लक्ष्मण जी आचार्य हैं, लक्ष्मण जी को भी पादुकापीठ चाहिए और आपको भी। आपकी पादुका तो भरत जी लेकर चले गये। मेरा पीठ एक साथ दोनों का पादुकापीठ बनेगा। आचार्य रूप में लक्ष्मण का और राजा के रूप में आपका। सुग्रीव आपको देखकर प्रसन्न होंगे, आचार्य को देखकर प्रसन्न होंगे। गुरु और गोविन्द को देखकर प्रसन्न होंगे। तो प्रभो! हमारी पीठ पर बैठ जाइये क्योंकि एक नियम है नीतिशास्त्र का-

पृष्ठेन सेवयेदर्कं जठरेण हुताशनम्।

स्वामिनं सर्वभावेन परलोकममायया।।

सूर्यनारायण की किरणों का सेवन पीठ से करना चाहिए, अग्नि का ताप हृदय से लेना चाहिए, स्वामी की सर्वभाव से सेवा करनी चाहिए और परलोक का सेवन माया रहित भक्ति से करना चाहिए। सरकार! आप सूर्यकुल के सूर्य हैं अतः आपको पीठ पर बिठा लिया-

भानु पीठ सेइय उर आगी।

स्वामिहिं सर्वभाव छल त्यागी।।

तजिमाया सेइप पर लोका।

मिटहिं सकल भव सम्भव शोका।।

चकार सख्यं रामेण प्रतिश्रैवाग्निसाक्षिकम्।

ततो वानरराजेम वैरानुकथनं प्रति।।

रामाया वेदितं सर्वं प्रणमाद् दुःखितेन च।

प्रतिज्ञातं च रूपेण बालिनो हननं प्रति।।

उपनिषद् में वर्णित 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया' में वर्णन है कि एक वृक्ष पर जिस प्रकार दो पक्षी चिपककर बैठे हैं उनमें से एक फल को खाता है और

दूसरा न खाकर भी प्रसन्न रहता है। ये पूरे लक्षण इस प्रसंग में घट रहे हैं भगवान श्रीराम और सुग्रीव एक ही शाखा पर दोनों बैठे हैं, दोनों मित्र हैं, दोनों आज समान परिस्थिति में हैं। किन्तु अभी सुग्रीव को राज्य मिलेगा। भगवान राम राजभोग को न लेते हुए भी प्रसन्न रहेंगे। पर इस सिद्धान्त को कौन समझाये? हमने अनेक बार कहा है कि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान लोगों को नहीं मिल पाता। यहाँ एक ब्रह्मवाद कैसे सिद्ध होगा? एक बड़े आश्चर्य की बात है कि कभी भी अद्वैत शब्द हमने उपनिषद् में भाववाचक नहीं देखा। यह शब्द जब भी आया है ब्रह्म का विशेषण बनकर आया है 'शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते' 'अद्वैतं तमसः परम्' (रामस्तवसराज) 'रामस्तवराज' पर दो भाष्य लिखे गये। एक तो दो सौ वर्ष पहले श्री हरिदास स्वामी ने लिखा। अयोध्या की परम्परा में इसका अनुवाद अभी हुआ है देखा है। जटिल संस्कृत में बहुत सुन्दर भाष्य है। मैंने भी भाष्य लिखा है प्रयाग कुम्भ में उसका लोकार्पण हुआ था हिन्दी अनुवाद भी हमने किया है। वह भाष्य पूर्ण विशिष्टाद्वैतपरक है। श्रीराम जीव के सखा हैं इस बात का पूर्ण प्रयोग यहीं हुआ। अग्नि को साक्षी दी गई। यहाँ का अग्नि कौन है? व्यावहारिक रूप में तो हनुमान जी ने अग्नि जलाया, परमार्थ में हनुमान जी आचार्य हैं हमारे श्री रामानन्द सम्प्रदाय के। प्रथम आचार्या सीता जी हैं हनुमान जी महाराज दूसरे आचार्य हैं। राम नाम ही अग्नि है- 'जासु नाम पावक अघ तूला' उनको साक्षी देकर सुग्रीव से भगवान राम की मित्रता हनुमान जी ने कराई। सुग्रीव ने कहा ये तुम्हारे मित्र हैं। तुम मित्र के बेटे हो ये तुम्हारे मित्र हैं। भगवान राम की सुग्रीव से मित्रता हो गई। दोनों एक दूसरे से सुख-दुःख कह रहे हैं। सुग्रीव ने कहा-सरकार! मैंने देखा एक महिला

को राक्षस लिये जा रहा था। उन्होंने अपने उत्तरीय में कुछ आभूषण बाँधकर हमारे यहाँ गिरा दिये थे। सीता जी प्रथम आचार्या हैं वे जानती हैं कि वानरों को भगवान राम की शरणागति लेनी है और शरणागति तब मिलेगी जब इनके पास कपट नहीं होगा। इनका कपट तब जायगा जब इनको सीता जी का प्रेम पट प्राप्त होगा। हम लोग दीक्षा देते समय प्रेमपट उड़ा देते हैं तब दीक्षा देते हैं। श्रीराम ने देखा कि सीता जी का पीला उत्तरीय था उसमें सीता जी ने तीन आभूषण बाँधे थे नूपुर, केयूर और कुण्डल। यह लाकर सुग्रीव उपस्थित कर रहे हैं। भगवान राम ने कहा लक्ष्मण! इन्हें तनिक पहचानो। वाल्मीकि रामायण का यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध हुआ। लक्ष्मण जी कह रहे हैं-

नैव जानामि केयूरे नैव जानामि कुण्डले।

नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।

यह बहुत मर्मस्पर्शी श्लोक है। कुमार लक्ष्मण कहते हैं प्रभो! मैं भाभी माँ के कुण्डलों को नहीं जानता मैंने उन्हें कभी देखा ही नहीं है। उनके केयूरों (बाजूबन्द) को भी नहीं जानता। किन्तु नूपुर को जानता हूँ पहचानता हूँ क्योंकि निरन्तर उनके चरणों का वन्दन करता हूँ। अतः स्पर्श से मैं पहचान लूँगा कि ये ही भाभी माँ के नूपुर हैं। भगवान श्रीराम सुग्रीव जी से आभूषणों को ले रहे हैं। गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं-

माँगा राम तुरत सोई दीन्हा।

पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।।

भगवान पट को हृदय से लगाकर शोक सागर में डूब गये। सुग्रीव ने कहा आप चिन्ता क्यों करते हैं? मैं सब प्रकार से आपकी सेवा करूँगा। भगवान ने कहा-सुग्रीव! तुम वन में क्यों रह रहे हो? तब सुग्रीव ने-

रामायावेदितं प्रणयाद् दुःखितेन च।

भगवान राम को दुःख के साथ निवदेन किया। सरकार! मय का पुत्र मायावी आक्रमण करने हमारे यहाँ आया था। बालि को उसने ललकारा था, बालि ने उसका पीछा किया। वह भागा और गुफा में जाकर छिप गया। तब बालि ने मुझे कहा कि तुम मेरी प्रतीक्षा करना और यदि मैं न आऊँ तो जान लेना कि मैं मारा गया। गोस्वामी जी महाराज कहते हैं-

मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी।

निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।

मास माने बारह अर्थात् बारह मास वाले दिनों तक मैं रहा था। जब भयंकर खून की धारा निकली तब मैंने सोचा कि बालि को राक्षस ने मार डाला तब द्वार पर शिला रखकर मैं भाग आया। मुझे राजा बना दिया गया मैंने भाई का श्राद्ध आदि किया और आनन्द से रहने लगा। इधर बालि ने राक्षस को मारा और किसी प्रकार शिला को हटाकर आया तो देखा कि छोटा भाई सिंहासन पर विराजमान है। उसे बहुत क्रोध आया, सुग्रीव ने क्षमा माँगी परन्तु बालि ने क्षमा नहीं किया। सुग्रीव को पीटा उसकी पत्नी को ले लिया और जहाँ-जहाँ सुग्रीव जाते वहाँ-वहाँ जाता। जब सुग्रीव को कहीं शरण नहीं मिली तब हनुमान जी ने सुग्रीव को बताया कि आपको स्मरण नहीं होगा कि जब इसी मायावी के बेटे दुन्दुभि ने भैंसे का रूप धारण करके बालि पर आक्रमण किया था तब बालि ने घनघोर युद्ध करके उसे मारा और उसके शरीर को उठाकर ऋष्यमूक पर्वत की ओर फेंक दिया। इसके रक्त से मतंग ऋषि का आश्रम दूषित हुआ था तब मतंग ऋषि ने शाप दिया कि अब ऋष्यमूक पर्वत पर बालि आयगा तो इसकी मृत्यु हो

जायगी। सुग्रीव से हनुमान जी ने कहा कि अब आप यहीं रहिये यहाँ बालि कदापि नहीं आयेगा। यह शाप वानरों ने बालि को बता दिया था। तब भगवान राम ने प्रतिज्ञा की और सुग्रीव से कहा कि आप चिन्ता मत कीजिए वैसे तो मैं बालि का वध न करता किन्तु आपकी पत्नी का इसने अपहरण किया है यह जघन्यतम पाप उसने किया है अतः मैं बालि का वध अवश्य करूँगा। इस प्रसंग को आप बहुत ध्यान से सुनिये इस विषय पर बहुत चर्चायें हैं किष्किन्धाकाण्ड का यह प्रसंग श्रोतव्य है। भगवान राम ने बालि वध की प्रतिज्ञा की परन्तु सुग्रीव ने कहा मुझे विश्वास नहीं है कि आप बालि को मार सकेंगे। लक्ष्मण जी ने कहा बताइये आपको किस प्रकार विश्वास होगा। तब सुग्रीव ने कहा सरकार! बालि ने दुन्दुभि राक्षस का अस्थि समूह (हड्डियाँ) एक योजन दूर फेंक दिया था यदि भगवान राम अपने एक चरण से इस अस्थिसमूह को दूर फेंक सकें तो मुझे विश्वास हो जायगा कि ये बालि को मार सकेंगे। तब-

दुन्दुभि अस्थिताल देखराए।

बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।

देखि अमित बल बाढ़ी प्रीति।

बालि बधव इन भई परतीती।

महर्षि वाल्मीकि जी ने वर्णन किया है-

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं सान्त्वयन् लक्ष्मणाग्रजः।

राघवो दुन्दुभेः कायं पादांगुष्ठेन लीलया।।

तोलयित्वा महाबाहुश्चिक्षेप दशयोजनम्।

आसुरस्य तनुं शुष्कां पादांगुष्ठेन वीर्यवान्।।

भगवान् मुस्कुराने लगे और सोचने लगे कि भक्त की क्या विवशता होती है।

क्रमशः.....

श्रीमद्भगवद्गीता (८०)

(गतांक से आगे)

(विशिष्टाद्वैतपरक श्रीराघवकृपाभाष्य)

भाष्यकार-धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

संगति- चूँकि यह योग अनादि है इसलिए मैंने इसकी सम्प्रदाय परम्परा को नवीन कर दिया। अतः तुम इसकी प्रमाणिकता में संदेह न करके श्रद्धापूर्वक इसका अनुष्ठान करना। यही बात भगवान् आगे कहते हैं।

**स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥४॥३**

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- वही यह पुरातन योग आज मुझ भगवान् कृष्ण द्वारा विभाग पूर्वक कहा गया क्योंकि तुम मेरे भक्त और सखा भी हो यह रहस्य अत्यन्त उत्तम है।

व्याख्या- 'स एवायं' का तात्पर्य है जो वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में सूर्य नारायण से कहा था वही तुमसे भी कहा। क्योंकि तुम मेरे भक्त, सखा और सम्बन्धी शिष्य हो। और यह रहस्य अत्यन्त उत्तम है जो अभक्त और अशिष्य से नहीं कहा जा सकता॥श्री॥

संगति- श्रीअर्जुन यद्यपि श्रीकृष्ण को परब्रह्म परमात्मा के रूप में जानते हैं, नहीं तो वे गीता १/२४ में, अच्युत गीता १/३१ में, केशव गीता १/३२ में, गोविन्द गीता १/३५ में, मधुसूदन गीता १/३६ में, जनार्दन गीता १/३७ में, माधव आदि भगवत्परक सम्बोधनों में भगवान् को सम्बोधित कैसे करते? फिर भी वे सम्पूर्ण जीवात्माओं का प्रतिनिधित्व करते हुए भगवान् के श्रीमुख से ही सामान्य लोगों तक परमेश्वर के अवतार मीमांसा की प्रामाणिक वैदिक चर्चा प्रेषित करने की दृष्टि से ही प्राकृत अज्ञानी मनुष्य जैसा प्रश्न कर बैठे-

अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥४॥४

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- श्री अर्जुन जिज्ञासा करते हैं- हे भगवन्, आपका जन्म तो अपर अर्थात् आधुनिक है। अर्थात् आपने मेरे समान काल में जन्म लिया और सूर्यनारायण का जन्म पर अर्थात् सूर्यनारायण का जन्म कश्यप और अदिति से कार्तिक शुक्ल षष्ठी को हुआ था। तो मैं कैसे जानूँ अर्थात् कैसे समझूँ कि आपने सृष्टि के आरम्भ में इस योग को सूर्यनारायण से कहा था।

व्याख्या- यहाँ अर्जुन की जिज्ञासा यह है कि आप तो मेरे समवयस्क हैं अर्थात् गीतोपदेश काल में अपना नब्बेवाँ वर्ष पूर्ण कर रहे हैं और सूर्यनारायण सृष्टि के प्रारम्भ में ही कश्यप अदिति से अवतार ले चुके हैं। उस समय आपका यह शरीर रहा ही नहीं होगा तो आपने इसी शरीर से सूर्यनारायण को योग का उपदेश कैसे दिया? यदि कहें किसी दूसरे शरीर को धारण करके तो उस समय की घटना का आपको स्मरण कैसे है, यदि कहें कि 'जातस्मरत्वात्' अर्थात् मुझे पूर्व जन्म की सब बातें स्मरण हैं तो प्रभो यह विशेषता तो बहुत लोगों में देखी जाती है। फिर उन जातस्मर सामान्य लोगों में और आपमें अन्तर ही क्या रहा? अर्जुन के इस प्रश्न पर भगवान् श्री कृष्ण ६ श्लोकों में वैदिक और प्रामाणिक मीमांसा प्रस्तुत करते हैं। ॥श्री॥

संगति- सर्वप्रथम भगवान् अपने भक्त अर्जुन की अल्पज्ञता और अपनी सर्वज्ञता सिद्ध कर रहे हैं। अर्थात् सामान्य जातस्मर अधिक से अधिक दो जन्मों की बात जान सकते हैं। कुछ लोग अपने एक जन्म की अधिक से अधिक १००-५० घटनाएं जानते होंगे परन्तु मैं अपने पूर्व के सभी जन्मों की सभी घटनाएं जानता हूँ। तुम एक भी घटना नहीं जानते। केवल कर्ण के विरोध के सम्बन्ध में उसके साथ घटी हुई तुम्हारे पूर्व जन्म की एक ही घटना का तुम्हें कुछ स्मरण है।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥४।५॥

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं। मैं अपने और तुम्हारे उन सभी जन्मों को जानता हूँ। हे परन्तप! तुम नहीं जानते।

व्याख्या- अर्जुन शब्द यहाँ शुभ्रान्तःकरण के लिए कहा गया है। तुम्हारे और मेरे बहुत से जन्म हो चुके परन्तु मेरे जन्म में भक्तों के प्रेम की विवशता होती है और तुम्हारे जन्म में धर्माधर्म की। मेरा जन्म लीला से ही होता है। तुम्हारे समान मैं भी देव, नर, तिर्यक्, शरीर धारण करता हूँ। अन्तर यह है कि मेरे शरीर नित्य होते हैं और तुम्हारे अनित्य, तुम अणु और अल्पज्ञ हो और मैं व्यापक तथा सर्वज्ञ। मुण्डकोपनिषद् में भी कहते हैं 'यः सर्वज्ञः सर्ववित्' 'यस्य ज्ञानमयं तपः', इसलिए मैं तुम्हारे और अपने सभी जन्मों को जानता हूँ। ॥श्री॥

संगति- अब भगवान् के अवतार के सम्बन्ध में अर्जुन बहुत सी जिज्ञासाएँ करते हैं। हे प्रभो! आप धर्म और अधर्म इन दोनों से परे हैं। फिर आप में शरीर धर्म कैसे सिद्ध होगा? आप स्वयं हिरण्यगर्भ हैं

फिर भी कौसल्या, श्री देवकी आदि माताओं के गर्भ में आपका निवास कैसा? आप अपरिच्छिन्न हैं अर्थात् आप किसी सीमा में नहीं बन्धते। अर्थात् एकदेशवर्ती कैसे? आप ब्रह्म होकर बालक कैसे? आप निरंजन होकर अवतार काल से अंजन कैसे धारण करते हैं? इस प्रकार अर्जुन के अनेक प्रश्नों का एक साथ समाधान करते हुए भगवान् जनार्दन बोले-

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।

रा० कृ० भा० सामान्यार्थ- हे अर्जुन! मैं आज अर्थात् जन्म रहित अव्ययात्मा अर्थात् विनाशरहित शरीर वाला और सम्पूर्ण प्राणियों का ईश्वर होता हुआ भी अपने स्वरूप और स्वभाव में स्थित होकर अर्थात् किसी भी परिस्थिति में भगवत्ता को न छोड़ते हुए अपनी योगमाया के साथ उत्पन्न होता हूँ।

क्रमशः.....

सुधी पाठक क्षमा करें

श्रीतुलसीपीठ सौरभ के अप्रैल २००९ के अङ्क में पृष्ठ ९ पर "ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते०" और "व्यामिश्रेणेव वाक्येन०" श्रीगीता, अध्याय तीन के प्रथम तथा द्वितीय श्लोक छप गए हैं। इनके स्थान पर श्रीगीता, अध्याय चतुर्थ के प्रथम तथा द्वितीय ये श्लोक क्रमशः समझे जाएँ-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्॥
एवं परम्परा प्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स काले नेह महता योगो नष्टः परंतप॥

सुधी पाठक इस त्रुटि के लिए क्षमा करें।

-सम्पादक मण्डल

श्रीनैमिषारण्यतीर्थ का महत्व

□ श्री आशीष शास्त्री

सतयुगे नैमिषारण्ये त्रेतायां च पुष्करे।

द्वापरे कुरुक्षेत्रे कलौ गंगा प्रवर्तते॥

सतयुग में नैमिषारण्य, त्रेता में पुष्कर, द्वापर में कुरुक्षेत्र, और कलियुग में गंगाजी का विशेष महत्व है।

पुरातन काल में नैमिषारण्य क्षेत्र में गयासुर नामक एक बहुत बलशाली विशाल दैत्य हुआ।

एक बार उसने घोर तपस्या करके अनेक मंत्रों का पाठ करके भगवान को स्वयं अपने सामने उपस्थित होने को विवश कर दिया। प्रभु ने उसे वरदान माँगने को कहा, वरदान माँगने के स्थान पर उसने भगवान से कहा कि मैं आपसे क्या माँगूँ यदि आप ही कुछ माँगना चाहते हैं तो माँग लीजिए भगवान को यह पता था कि गयासुर बिना अपनी इच्छा के मर नहीं सकता उन्हें अवसर मिल गया और उन्होंने गयासुर से कहा हम चाहते हैं कि आपकी मृत्यु हमारे हाथों हो। वह इतना बड़ा दानी, उसने तथास्तु कह दिया। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से उसके टुकड़े कर दिये उसका शरीर तीन टुकड़ों में बट गया। उसके चरणों का हिस्सा बिहार क्षेत्र में 'गया' में जाकर गिरा वह गयाधाम कहलाया। आप वहाँ जाकर पितरों को पिंड दान करते हैं वहाँ पितरों के चरणों की पूजा होती है। वह क्षेत्र 'चरणगया' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऊपर का हिस्सा अर्थात् मस्तक बद्रीनाथ में गिरा उस जगह का नाम 'कपालगया' कहा जाता है।

वहाँ अगर आप पिंडदान करते हैं तो पितरों के शीश की पूजा होती है।

बीच का हिस्सा नैमिषारण्य में ही रह गया यहाँ पर यदि आप पिंडदान करते हैं तो पितरों के पेट की पूजा होती है यानि उनके पेट भरते हैं।

इस तरह उसके शरीर के तीन टुकड़े तीन जगह गिरे फिर भी वह नहीं मरा तब ऋषियों ने ब्रह्मा जी से पूछा अब क्या करें? ब्रह्मा जी ने कहा कि इसकी छाती पर यज्ञशाला बनाकर यज्ञ करें। तब ऋषियों ने एक हजार वर्ष तक उस पर यज्ञ किया फिर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई तब भगवान विष्णु ने गयासुर से पूछा कि हे गयासुर! आपने हमें वचन दिया था कि आपकी मृत्यु मेरे हाथों होगी फिर ऐसा क्यों नहीं हो रहा है? तब गयासुर ने कहा भगवन्! मुझे अपने कई जन्मों का स्मरण है, मैं बहुत जन्म ले चुका हूँ मुझे पता है कि मरने के बाद आत्मा की क्या गति होती है? जब प्राणी संसार से जाता है तो पहले वह पितरलोक में पितर बनकर जाता है। पितर लोक भी पृथ्वी मंडल जैसा है। पृथ्वी पर एक सूर्य के तपने से इतनी प्रचण्ड गर्मी होती है कि यहाँ सबको शीतलता की आवश्यकता होती है। सब शीतल जल और ठंडी हवा चाहते हैं।

गयासुर ने कहा भगवन्! पृथ्वी पर तो एक सूर्य तपता है तब यह हाल है पितरलोक में तो "दस हजार एक सौ" सूर्य तपते हैं। वहाँ की भीषण उष्णता से त्रस्त जब आत्मा छटपटाता हुआ वहाँ के लोगों से शीतलता प्रदान करने को कहता है तब आपके

पार्षद कहते हैं। पृथ्वी मंडल पर कभी आपने वृक्ष लगाये हैं या दान किये हैं तो आपको उस वृक्ष की छाया आपको शीतलता प्रदान करेगी वरना ये अग्नि की वर्षा करेंगे जिससे आपका जीवन अस्त व्यस्त होकर पीड़ित हो जाएगा। इसलिए तीर्थ में वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए। गयासुर ने कहा जब हमें भूख लगती है हम स्वादिष्ट भोजन की मांग करते हैं तब आपके पार्षद कहते हैं अपना पेट भरने के अलावा कभी किसी का पेट भरा है। कभी किसी भूखे को अन्नदान किया है। आवश्यक नहीं है कि भण्डारा चलवाए सामर्थ्य है तो ठीक है सामर्थ्य नहीं है तो श्रमदान करे अर्थात् किसी भण्डारे में परोसने की सेवा भी कर सकते हैं यह भी एक महापुण्य का काम है। पितरलोक के पार्षद कहते हैं यदि आपने ऐसा किया है तो आपको स्वादिष्ट भोजन प्रदान करेंगे वरना यों ही भूखे रहना पड़ेगा इस तरह प्राणी अनेक कष्ट भोगता रहता है।

गयासुर ने कहा भगवन् मुझे इन सब का ज्ञान है हे प्रभो! मैं यह भी जानता हूँ कि पितरों के निमित्त जो भी दान धर्म किया जाता है उसका बीस प्रतिशत ही उस प्राणी को मिलता है बाकी आपके पार्षद ले लेते हैं। तो भगवन्, मैं यह चाहता हूँ कि इस नैमिषारण्य की धरती पर अगर कोई भी अपने पितरों के लिए किसी भी प्रकार का दान करें, भागवत पाठ कराये, कथा श्रवण करें तो वह शत प्रतिशत पितरों को ही मिल जाय यह मैं आपसे वरदान के रूप में चाहता हूँ।

भगवन् ने कहा मैं आपसे प्रसन्न हूँ आपको वचन देता हूँ अगर इस नैमिषारण्य तीर्थ में किसी ने किसी प्रकार का कोई भी दान दिया है तो वह पूरा का पूरा उसके पितरों को प्राप्त होगा। इस प्रकार गयासुर का उद्धार हो गया। नैमिषारण्य तीर्थ की पावन भूमि पितरों के तृप्ति के लिए पूजनीय व फलदायिनी है।

□□□

पूज्यपाद जगद्गुरु जी के आगामी कार्यक्रम

□ प्रस्तुति-पूज्या बुआ जी

दिनांक	विषय	आयोजक तथा स्थान
१८ जून २००९ से २६ जून २००९ तक	नवदिवसीय श्रीमद्भागवतकथा	श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर, सिंगापुर।
०७ जुलाई २००९	श्रीगुरु पूर्णिमा	श्रीचित्रकूट में ही मनायी जाएगी
१९ सितम्बर २००९ से २७ सितम्बर २००९ तक	श्रीमद्भागवत कथा	नैमिषारण्य जिला-सीतापुर (इस कथा का आमन्त्रण अगले पृष्ठ पर देखें)

**विश्वविलक्षण विभूति धर्मचक्रवर्ती श्रीवैष्णवचक्रचूड़ामणि, महामहोपाध्याय
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से प्रथम बार
श्रीनैमिषारण्य तीर्थ में 1008 श्रीमद्भागवत पारायण महायज्ञ**

भगवत्प्रेमी महानुभाव,

ज्ञातव्य है कि आगामी 19 सितम्बर से 27 सितम्बर 2009 तक अठासी हजार ऋषियों की तपस्थली नैमिषारण्य तीर्थ में पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य जी महाराज के श्रीमुख से श्रीमद्भागवत कथा का विशाल एवं ऐतिहासिक आयोजन किया जा रहा है।

यह महायज्ञ विश्वकल्याणार्थ एवं यजमानों के पितरों को मोक्ष प्रदान कराने हेतु पितरों की मोक्षदायिनी नगरी नैमिषारण्य में हो रहा है जिसमें आप सभी सम्मिलित होकर तथा उसके यजमान बनकर पुण्य लाभ प्राप्त करें इस महायज्ञ में 1008 यजमानों के भाग लेने की सुविधा है। जो भी महानुभाव पितरों के नाम से, सुख-शान्ति-समृद्धि व परिवार कल्याण हेतु भागवत पाठ कराना चाहें वे शीघ्र ही अपना नाम अंकित दें। यजमानों की आवास-भोजन की व्यवस्था आयोजन समिति ही करेगी।

एक यजमान के लिए देय राशि 5,100.00 मात्र है। तथा जो यजमान महानुभाव अपने मातृ पक्ष-पितृपक्ष व श्वसुर पक्ष तीनों के नाम गोत्र से पाठ कराना चाहें वे 15,300.00 रुपये देकर अपना नाम लिखा सकते हैं।

निवेदक

पं० अमरनाथ शास्त्री

आयोजक

हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवासमिति

जगद्गुरु रामभद्राचार्य धाम

(बस स्टैण्ड के पास) नैमिषारण्य

जि० सीतापुर (उ०प्र०)

फोन नं०- 05865-251272

मो०- 09918331369, 09936377207

ड्राफ्ट बनवाने का पता-

हरे राम हरे कृष्ण सत्संग सेवा समिति

(मिश्रिख कम नीमसार 0210112) इलाहाबाद बैंक के नाम बनवाकर समिति के नाम नैमिषारण्य के नाम भेज सकते हैं।

□□□

वसिष्ठायनबिहारी श्रीराधागोविन्द

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

भावे हि विद्यते देवो न काष्ठे न च मृण्मये।

अर्थात् देवता भवन में विद्यमान होते हैं लकड़ी या मिट्टी में नहीं। यदि साधक का शुद्ध भाव हो तो भगवान् कहीं भी प्रकट हो सकते हैं।

कुछ इसी प्रकार का उदाहरण है हमारे वसिष्ठायनम् में विराजमान श्रीराधागोविन्द जी का। देखने में दोनों ही सरकार अष्टधातुमय मूर्ति हैं परन्तु हैं चिन्मय। इन्हें मेरी बड़ी बहिन और आप सबकी बुआ जी डा० कुमारी गीता देवी मिश्रा को सेवा के लिए सौंपा था एक अभिज्ञात किन्तु लगभग दसों शताब्दियों के इतिहास के साक्षी चिरजीवी सिद्धसन्त परमवीतराग १००८ श्रीपरमहंस श्रीरणछोड़दास जी महाराज ने। जब तुम्हारी बुआ जी १८ मई १८६५ को अपनी १९ वर्षीय अल्पवय में विरक्तदीक्षा लेने रणछोड़दास जी महाराज के पास उपस्थित हुई थीं। सेवा सौंपते हुए सद्गुरुदेव ने स्पष्ट निर्देश के स्वरों में कहा था— गीता सुशिष्या कर्तव्या किमन्यैशिष्यसंग्रहैः। पुनः आदेश की मुद्रा में कहा— वत्से गीता! श्रीसीताराम जी से अभिन्न मानकर ही श्रीराधागोविन्द जी की सदैव मनसा वाचा कर्मण सेवा करती रहना। ये तुम्हारी सभी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे। सुयोग्य शिष्या ने गुरुदेव का आदेश सिरमाथे स्वीकार कर श्रीराधागोविन्द को प्राप्त किया। कुछ दिनों के लिए श्रीपुष्कर में अनन्तर कुछ वर्षों के लिए राजकोट में विराजने के पश्चात् श्रीराधागोविन्द का मन गंगाद्वार आनन्दतट श्री हरिद्वार में स्थायी रूप से निवास करने का हो गया। प्रभु का संकल्प कौन टाल सकता था। १९८७ के दिसम्बर महीने में मेरी अष्टोत्तर सहस्ररामायण कथा हरिद्वार जयराम आश्रम में हुई। जिसमें एक हजार रामायण के पाठों के साथ मैं प्रस्तुत हुआ नवाह श्रीरामकथा के लिए। इस कथा को श्रवण करने के लिए मेरे साथ मुकुन्द (तुम्हारी बुआ जी) भी श्री हरिद्वार पधारी थीं। उसी समय हमने हरिद्वार में श्री राधागोविन्द जी के लिए स्थायी निवास बनाने का निर्णय लिया। अब तक

किसी प्रकार संग्रह करके हम ७२ हजार रुपये इकट्ठा कर पाये थे। उसी से वसिष्ठायनम् का भूमिक्रय किया। उन दिनों किसी के नक्शे नहीं पास हो रहे थे और अधिकारी स्पष्ट कहते थे कि चाँदी के पहिये के बिना फाइल आगे नहीं बढ़ती। परन्तु राधागोविन्द के जादू ने बिना घूस दिये ही भवन का नक्शा पास करा दिया। उस समय हरिद्वार में एकमात्र सत्यमित्रा-नन्द गिरि जी से मेरा परिचय हो सका था। उन्हीं के संकेत से शोभाराम नामक भवन निर्माता से अनुबन्ध करके हमने वसिष्ठायनम् का निर्माण प्रारम्भ किया। राधागोविन्द जी का यह कौतुक ही कहा जाएगा कि जो मैं अपने ११ वर्ष के कथावाचन कार्य खण्ड में मात्र ७२ हजार रुपये जुटा पाया था उसी मुझ व्युत्पन्न किन्तु निष्किञ्चक कथा वाचक को मात्र ८ महीनों में लगभग तीन लाख रुपये प्राप्त हो गए जिनसे मैं वसिष्ठायनम् का निर्माण करा सका और १९८८ की कार्तिक शुक्ला पञ्चमी के दिन तुम्हारी बुआ जी की इच्छा पूर्ण हुई और भगवान् राधागोविन्द बन गए वसिष्ठायन बिहारी। उनकी सेवा पूजा के लिए साधु की अपेक्षा थी प्रथम स्वयं तुम्हारी बुआ जी तदनन्तर मेरा विरक्त शिष्य वैष्णवदास पश्चात् रघुनाथदास, पुनः रघुवरदास, वर्तमान में रघुनन्दनदास सेवा पूजा कर रहा है। राधागोविन्द के चमत्कार तुम्हारी बुआ जी ने तो बहुत देखे। उन्हीं की कृपा से राजकोट में गीतामन्दिर, प्राथमिकशाला, बालमन्दिर, जथनाथ हॉस्पिटल आदि प्रकल्पों का निर्माण हुआ जो उस समय की परिस्थिति में सामान्य व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था इसी प्रकार हरिद्वार में वसिष्ठायनम् का निर्माण। परन्तु मैंने भी दो-तीन बार राधागोविन्द के विचित्र चमत्कारों के अनुभव किए। एक बार १९९९ के नवम्बर में तुलसीपीठ चित्रकूट में चोरी हुई उसमें बहुत सी बहुमूल्य वस्तुएँ रजतपात्र और भगवान् के आभूषण भी चोरों के हाथ लगे। मेरी अग्रजा को यह अशंका हुई कि चोर श्रीराघव सरकार की शृंगार पेटी भी चुरा ले गए

जिसमें लगभग २ लाख के श्रीराघव जी के शृंगार थे। तुलसीपीठ के शृंगारी मिथिलाभाव के रसिक सन्त थे उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि राघव जी अपने शृंगार की रक्षा नहीं कर पाए जबकि किशोरी जी ने अपने शृंगार की रक्षा कर ली। हमारे भी मन में कुढ़न होती थी और तुम्हारी बुआ जी भी बार-बार दुखी होती थीं कि राघव जी के शृंगारों की दुष्ट चोर दुर्दशा करते होंगे परन्तु था कुछ इसके विपरीत। तुलसीपीठ की चोरी की घटना से कुछ दिन पूर्ण हमारा हरिद्वार जाना हुआ उसी समय आप सबकी बुआ जी ने राघव जी की शृंगार पेटी राधागोविन्द जी के मन्दिर के निचले भाग में रखकर हल्के कपड़े से ढांक दिया था। ईश्वरीय इच्छा से इनको यह तथ्य भूल गया। इस प्रकार २००२ तक हम यही समझते रहे कि राघव जी की शृंगार पेटी चुरा ली गई। इन तीन वर्षों में राधागोविन्द जी की सेवा का भार रघुबरदास के हाथ था जबकि उस व्यक्ति का हाथ बहुत अच्छा नहीं था। वह तो क्षण भर में बीघे का बिस्से करने वाला जन्तु था। परन्तु सामान्य वस्तु से ढकी बहुमूल्य शृंगारों से भरी इस पेटिका पर उसकी दृष्टि कैसे नहीं गई? जबकि वह निरन्तर मन्दिर परिसर को स्वच्छ करता तथा वस्तुएँ उलट पलट कर स्वच्छ करता था। निश्चित राधागोविन्द जी ने तीन वर्ष पर्यन्त क्षण-क्षण रघुबरदास की आँखों में धूल झोंकते हुए अपनी ही अभिन्न अवतारी श्रीराघवसरकार बालक-राम जी की शृंगारपेटी की रक्षा की। मैं श्री राधा को भाभी माँ और श्री गोविन्द को मित्र मानता हूँ और उन्हीं के मन्दिर वाले कक्ष में मैं अकेले ही शयन करता हूँ। एकदिन हरिद्वार में ही मैं स्वप्न में था या जागृत मैं कह सकता हूँ स्वप्नाभास में देखा कि रामलीला चल रही है। वातावरण रसमय है निशिथिनी के आनन को अमृतांशुमाली चन्द्रमा किरणकुंकुमों से अभिरञ्जित कर रहे हैं मेरे ही समक्ष अलौकिक शोभामयी षोडश शृंगार सम्पन्न नीलपरिधान धारिणी वृन्दावन बिहारिणी राधारानी कन्हैया जी को गलबहियाँ देकर खड़ी हैं मेरी ओर दृष्टि करके कहा- भद्र! तुम देवर हो ना। एक श्लोक सुनाओ- मैंने

विलम्ब किये बिना ही स्वप्नाभास में यह श्लोक पढ़ा-

नृत्यन्मत्तमयूरिका पतिपतद् बरार्हमौलिलसच्छ्री-
वत्सं जनवत्सलम् नव घनश्यामं विरामं द्विषाम्।
कन्दर्पामित सुन्दरं नटवरं वृन्दावनीभूषणं,
श्रीराधा मुखकज्जमञ्जुमधुपं तापिच्छनीलं श्रये॥

अर्थात् नाचते हुए मयूरी बल्लभ मोर के गिरे हुए पंख से निर्मित मुकुट धारण किए हुए श्रीवत्स लाञ्छन भक्तवत्सल नीलमेघ के समान श्यामल, शत्रुओं को नष्ट करने वाले को टिकाम सुन्दर नटों में श्रेष्ठ, वृन्दावन के अलंकार तमालनील श्रीराधा के मुखकमल के भ्रमर श्रीकृष्ण को मैं आश्रय करता हूँ। मुझे पूर्ण स्मरण है कि श्लोक सुनते ही राधा जी ने मातृभाव से पूर्ण होकर मेरे वामकपोल को चूम लिया। आज भी वह दृश्य मेरे रोमांच का कारण बन जाता है। तुरन्त फिर मैं ऊँचे स्वर में चिल्लाया- मुकुन्द, मुकुन्द! स्वर सुनकर तुम्हारी बुआ जी अपने कक्ष से आकर और चन्द्रदत्त सुवेदी बाहर से किवाड़ खटखटाने लगे। सभ्रमा वेग में विह्वल मैं पाँच मिनट तक बन्द दोनों दरवाजों को नहीं खोल पा रहा था। किसी प्रकार में प्रकृतिस्थ हुआ दोनों दरवाजे खोले। पर बहुत काँप रहा था। राधा जी के समक्ष गाया हुआ यह श्लोक मैंने सभी को लिखवा दिया। यही राधा गोविन्द कभी-कभी मेरे विनोद के केन्द्र बनते रहे हैं और मैं भी कभी-कभी अपनी भाभी माँ और मित्र से रसिक किन्तु मर्यादित विनोद कर रहा हूँ। मेरे सख्यसम्बन्ध की रक्षा करते हुए प्रियाप्रियतम ने अपनी विवाह महोत्सव रचाने की ठान ली है।

आगामी ५ जून २००९ को सगाई वाग्दान और ७ जून तिथि को प्रियाप्रियतम का विवाहउत्सव होगा उसमें मुझे बराती बनने का सौभाग्य मिलेगा। शेष वर्णन अगले अंक में। यहाँ इतना ही कहकर विराम ले रहा हूँ कि-

जय राधागोविन्द जू गिरिधर प्राणाधार।

दुलहिन कीरति लाइली दूलह नन्दकुमार॥

प्रियाप्रीतम की जय। □□□

जय जगन्नाथ

रूठे हुए भक्त को भगवान् का मनाना

□ धर्मचक्रवर्ती महामहोपाध्याय श्रीचित्रकूटतुलसीपीठाधीश्वर
जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज

अब तक आता है रहा स्वामी के ढिग दास।
किन्तु आज स्वामी चले निज सेवक के पास।।

श्रीजगन्नाथ जी के प्रसाद का सेवन किये हुए दो वर्ष हो रहे थे, मेरे मन पर विकलता का कहर बरस रहा था। मैं भी व्यस्तताओं के कारण जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए अवसर नहीं प्राप्त कर पाया। संयोग से उड़ीसा बालांगिरि में सप्तदिवसीय श्रीमद्-भागवत का कार्यक्रम बना। मुझे विगत १० मई २००९ से १६ मई २००९ तक के लिए वहाँ जाने का सुयोग मिला। उसके पहले एक मई से सात मई तक पश्चिमी चम्पारण बगहा में मेरा कार्यक्रम था। मध्य में दो दिन का अन्तराल मेरी प्रसन्नता का कारण बना। मैंने मन ही मन सोचा कि इस अन्तराल का सदुपयोग करके मैं जगन्नाथ जी के दर्शन करूँ। इसी दृष्टि से विगत आठ मई २००९ को १२.४० अपराह्न में पटना से कोलकाता के लिए जाने वाली जेट फ्लाइट की टिकिट और वहाँ से सायं ७ बजे भुवनेश्वर जाने वाली फ्लाइट से दो लोगों की टिकिट आरक्षित करा ली। उसी योजना के आधार पर अनेक कष्ट सहते हुए मैं अपने 'राघवयान' से बड़े-बड़े जामों को पार करते हुए आठ मई के प्रातः पटना

पहुँचकर जल्दी से राघव सेवा सम्पन्न कर चिलचिलाती धूप में अपनी विद्यार्थी सुवेदी के साथ पूर्वाह्न ११ बजे पटना हवाई अड्डे पर पहुँचा। उस समय पटना का तापमान ५० डिग्री सैल्सियस था। बोर्डिंग करवा दी। चिरप्रतीक्षा के पश्चात् जब बस में बैठकर मैं विमान के पास पहुँचने ही वाला था कि तब तक वज्रपात जैसा हो गया।

सूचना मिली कि तापमान की अधिकता के कारण यह उड़ान नहीं भर सकेगा अतः यह विमान निरस्त किया जा रहा है। मुझे अपार कष्ट हुआ और ग्लानि और अवसाद से झुलस गया। चीख पड़ा मैं क्योंकि अब श्रीरघुनाथ के ही अभिन्न स्वरूप प्राणप्रियतम जगन्नाथ जी के दर्शनों का आनन्द व्यवहित हो गया। निकलते हुए आँसू पिये और नैराश्य के वातावरण में प्रवास स्थान पर लौटा। फिर कड़ाके की धूप में अपने ही 'राघवयान' से क्रन्दनव्यस्त मन के साथ उड़ीसा की ओर चल पड़ा। संयोग से इन दिनों मेरे राघवयान का ऐसी भी काम नहीं कर रहा है। मार्ग में कोई भी भोजन न लेने का मेरा दृढ़ नियम जगन्नाथ दर्शनों की अन्तर्पिपासा और ५२ डिग्री० सैल्सियस पहुँचे हुए

तापमान से जनित बाह्य पिपासा इन दोनों ने मुझे झकझोर कर रख दिया। मैं खीझा और जगन्नाथ जी को उलाहनाभरा तत्काल स्वरचित श्लोक सुनाया-
 ऐशाभिमानेन दिदृक्षमाणं स्वं मां जगन्नाथ वृक्षा व्यहंस्त्वम्।
 कुनास्तिके वै युधि रामभद्राचार्य सहायं मुहुगजुहोषि॥

अर्थात्- हे जगन्नाथ! तुमने अपने ईश्वरता के अहंकारता के कारण अपने दर्शनों के लिए इच्छुक मुझ अकिञ्चन शारीरिक दृष्ट्या असमर्थ ब्राह्मण वैष्णव भक्त को व्यर्थ ही विघ्नित कर दिया। अर्थात् जानबूझकर दो दो विमान निरस्त करवा दिए। जबकि भगवन्! जब दुष्टनास्तिक लोग तुम पर हमला बोलते हैं तब अपनी सहायता के लिए मुझ रामभद्राचार्य को ही गुहार लगाकर बार-बार बुलाते हो। निश्चित रूप से मेरे उलाहने से जगन्नाथ जी आहत हुए और उसका परिणाम मैंने स्वयं देखा। बालांगिरि में अपने आध्यात्मिक अनुज सत्य प्रज्ञानन्द सरस्वती जी के आनन्द निकेतन में मैंने प्रवास किया ठीक चौथे दिन जगन्नाथ जी का पण्डा पुरी से प्रसाद लेकर पाँच सौ किलोमीटर दूर से मेरे यहाँ उपस्थित हुआ। मुझे लगा कि यह प्रसाद स्वयं जगन्नाथ जी ही लेकर आए हैं उसमें न तो किसी प्रकार का विकार था और न ही स्वाद में कोई अन्तर। ५०० किलोमीटर दूर से आया प्रसाद यथावत् रहे यही तो जगन्नाथ जी का चमत्कार है। मैंने बड़े प्रेम से प्रसाद पाया और अपने परिकरों एवं आश्रम वासियों को भी पवाया।

पुनः दूसरे दिन जगन्नाथ जी ने एक महिला को प्रेरणा दी और वे भी पुरी से बालांगिरि की ५०० किलोमीटर दूरी तय करके प्रसाद लेकर उपस्थित हुईं। इसमें और दिव्यता और मधुरता थी। फिर सातवें दिन जगन्नाथ जी ने कार्यक्रम के आयोजक महन्त ब्रजमोहन शरण जी को प्रेरणा देकर निजी ए०सी० कार से मुझे भुवनेश्वर पहुँचवाया। मेरे मन में क्षौर कराने की इच्छा हुई। वहाँ जो नाई महोदय मिले उनका मैंने नाम पूछा- उन्होंने कहा मेरा नाम मधुसूदन है मैं पुरी का निवासी हूँ। मैं चकित रह गया, वे बाल बना रहे थे और मैं उनके छुरे के स्पर्श में जगन्नाथ जी की कृपा की अनुभूति कर रहा था।

पुनः राघव जी की संक्षिप्त सेवा सम्पन्न करके विगत १७ मई को पूर्वाह्न ९ बजे हम लोग जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए पुरी को प्रस्थान किए। उसी दिन विगत दिन ही निर्वाचित उड़ीसा के मुख्यमन्त्री जगन्नाथ जी के दर्शनों के लिए पुरी आ रहे थे। सभी मार्ग अवरुद्ध थे पर मेरी कार को किसी ने नहीं रोका। मैं निर्बाध रूप से अपने विद्यार्थी सुवेदी तथा आध्यात्मिक भतीजे सत्य वेदानन्द सरस्वती और कतिपय सहयोगियों के साथ मन्दिर पहुँचा। कोई भीड़ नहीं थी। बहुत प्रेम से दर्शन किए और अपने तीखे उलाहने के लिए जगन्नाथ जी से क्षमा माँगी और उनका महाप्रसाद आकण्ठ पाया। रूठे भक्त को भगवान् ने मना लिया। जय जगन्नाथ।

□□□

सत्सङ्ग की अद्भुत महिमा

□ पूज्यपाद जगद्गुरु जी

सनातन धर्म के अनाद्यविच्छिन्न परम्पराप्राचीर में सत्सङ्ग का उसी प्रकार महत्व, उपादान और उपयोग है जैसा उदयाचल के प्राचीर में प्रत्यूषकालीन भगवान् मरीचिमाली सूर्यनारायण का। श्रीमद्भागवतम् के एकादश स्कन्द में तो श्री उद्धव को समझाते हुए भगवान् श्री कृष्ण ने यहाँ तक कह डाला कि “मुझे योग, ज्ञान, सांख्य, स्वाध्याय, तपस्या, त्याग, इष्टापूर्त, दक्षिणा, व्रत, वेदाध्यय श्रौत, स्मार्त उभय-विधयज्ञ, नियम, यम, चान्द्रायणादि व्रत तीर्थाटन आदि सभी श्रुति स्मृति विहित सभी साधन मुझ परमात्मा को उतना नहीं प्रसन्न कर पाते जितना कि समस्त सांसारिक संगों को नष्ट करने वाला सत्सङ्ग प्रसन्न कर लेता है-

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।

न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्त न दक्षिणा॥।

व्रतानि यज्ञाश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।

यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥।

(भाग० ११/१२/१-२)

क्योंकि सत्सङ्ग से ही वृत्र, बाण, बलि, विभीषण, हनुमान, ब्रजगोपिकाएँ आदि परम भागवत अपनी भगवद्भावनाविरुद्ध परिस्थितियों का निरसन करके मुझ परमात्मा को प्राप्त हो गए। सतां सङ्गः सत्सङ्गः, सदिभः सङ्गः सत्सङ्ग सन्तों का सङ्ग और सन्तों के साथ सङ्ग सत्सङ्ग के नाम से जाना जाता है। भवभूति भी उत्तररामचरितम् नाटक में इसी

व्युत्पत्ति का समर्थन करते हैं। सतां सदिभ सङ्गः कथमपि च पुण्येन भवति।

अर्थात् सन्तों का सन्तों के साथ समागम किसी विशेष पुण्य का परिणाम होता है। श्रीगोस्वामीचरण भी श्रीरामचरितमानस में सत्सङ्ग की उपलब्धि बड़े भाग्य का परिणाम मानते हैं क्योंकि उससे प्रयास के बिना ही संसार भाव का भङ्ग हो जाता है। अर्थात् सन्त के सान्निध्य में बैठने पर संसार का प्रत्येक पदार्थ सीताराममय भासने लगता है। मानस के उत्तरकाण्ड में श्रीसनकादि के आगमन पर प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम कहते हैं-

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा।

तुम्हरे दरश जाहि अघ खीसा॥।

बड़े भाग पाइअ सत्संगा।

बिनहिं प्रयास होहि भवभंगा॥।

-मानस ७/३३/७-८

अर्थात् हे मुनीश्वरो! आप लोगों के दर्शन से आज मैं बहुत धन्य हूँ क्योंकि सन्तों के दर्शन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और प्रयास के बिना ही संसार की आसक्ति नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार आर्षवाङ्मय में जिसकी महिमा का निरन्तर गान किया गया वह सत्सङ्ग गंगा प्रवाह की भाँति भारतीय जनमानस को पावन करके उसे रामसापेक्ष राष्ट्रवाद की अवधारणा से जोड़ दे यही मेरी भगवान् श्रीसीताराम जी से अभ्यर्थना है।

□□□

मानसोक्त विप्रनिष्ठा की शास्त्रीयता

□ मानसमृगेन्द्र डॉ० ब्रजेश दीक्षित (जबलपुर)

श्रीमद्गोस्वामीतुलसीदास जी महाराज की अमरकृति श्रीरामचरितमानस में आद्योपान्त विप्रनिष्ठा दृष्टिगोचर होती है। यह गोस्वामी जी का व्यक्तिगत आग्रह न होकर निगमागम सम्मत आग्रह है। व्यक्तिगत आग्रह वन्दना प्रकरण में दृष्टव्य है-

“बन्दऊँ प्रथम महीसुर चरना।

मोहजनित संशय सब हरना।।” मानस १/२/३

यह व्यक्तिगत आग्रह भी निगमागम सम्मत है, चूँकि उनके इष्ट का अवतार जिन चार प्रमुख धर्म स्तंभों के लिए होता है, उनमें ‘विप्र’ शीर्ष पर है-

बिप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।

मानस २/१८२

शीर्ष धर्मस्तंभ के रूप में विप्र की महत्ता का प्रतिपादन श्रीमद्भागवत भी करती हैं। यथा-

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्मः सनातनः।
तस्य च ब्रह्म गोविप्रास्तपो यज्ञाः सदक्षिणाः।
तस्मात् सर्वात्मना राजन् ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः।
तपस्विनो यज्ञशीलान् गाश्च हन्मो हविर्दुघाः॥

भाग० १०/४/३९-४०

सृष्टि के आरंभिक काल में विप्र को विप्रत्व में प्रविष्ट कराने वाली बुद्धि बड़ी साधना एवं तपस्या से प्राप्त हुई है। अग्रजन्मा ब्राह्मणों ने पर्वतों की कंदराओं तथा नदियों के संगम पर शीतातप वर्षा को झेलते हुए बुद्धि को प्राप्त किया है। इसकी पुष्टि भगवान् ऋग्वेद करते हैं-

उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम्।

धिया विप्रो अजायत॥

ऋ० ८/६/२८

ऐसी तपःपूत, धी (बुद्धि) से सम्पन्न ब्राह्मणों की चरण रज मोहजनित संशय को हरण करने में सक्षम होती है। किन्तु जब ऐसी लोककल्याणकारिणी बुद्धि की प्राप्ति में साधना, तपस्यारत ब्राह्मणों को जब आसुरी शक्तियाँ व्यवधान उत्पन्न करती हैं, तब परमात्मा उस दुर्लभ विप्रत्व की रक्षा हेतु अवतार लेकर साधना पथ को सुगम बनाते हैं।

श्रीमन्मानसजी में प्रभु श्रीराम की ‘महि भार हरन लीला’ का शुभारंभ ब्रह्मण्यता से ही होता है। तभी तो ब्रह्मर्षि विश्वामित्र मुग्ध होकर ‘ब्रह्मण्यदेव’ शब्द से समलंकृत करते हैं-

प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना।

मोहि नित पिता तजेउ भगवाना॥

मानस १/२०८/४

ब्रह्मर्षि का यह वाक्य अत्यन्त शास्त्रसम्मत है। प्रभु के लिए अनेक ग्रन्थों में ‘ब्रह्मण्य’ शब्द आया है। ब्रह्मण्य का तात्पर्य है- ‘ब्राह्मणों का हितैषी या शुभचिंतक’। श्रीमद्भागवत में यह विशेषण सर्वप्रथम सनकादि ऋषि ने तब दिया, जब प्रभु ने कहा कि “छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम्” अर्थात् जो कोई आपके विरुद्ध आचरण करेगा, वह मेरी भुजा ही क्यों न हो, उसे मैं तत्काल काट लूँगा। संभवतः इसी कारण गोस्वामी जी ने उत्तरकांड में लिखा कि ‘वंश कि रहहिं द्विज अनहित कीन्हे’। वस्तुतः द्विज का अहित करने पर भगवद्-इच्छा ही वंश को समूल नष्ट कर देती है। प्रभु के उक्त उदार वाक्य के पश्चात् सनकादि प्रभु ‘परं ब्रह्मण्य’ का विशेषण देते हैं-

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं, ब्राह्मणाः किल ते प्रभो।
विप्राणां देव देवानां, भगवानात्मदैवतम्॥

भाग० ३/१६/१७

अर्थात् हे प्रभो! आप ब्राह्मण एवं देवों के देव ब्रह्मादि के भी आराध्यदेव हैं, पर आप ब्राह्मणों के कितने हितैषी हैं कि उन्हें लोकशिक्षा के लिए अपना आराध्य मानते हैं। श्रीसनकादि एवं विश्वामित्र जी की भाँति भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र सुदामा भी मुग्ध होकर यही विशेषण देते हुए कहते हैं कि “मैंने उन ब्रह्मण्यदेव की ब्रह्मण्यता के दर्शन” किए हैं। यथा-

अहो ब्रह्मण्य देवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया।
यद् दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि॥

भाग० १०/८१/१५

महाभारत के अनुशासन पर्व में क्षत्रिय शिरोमणि देवव्रत भोष्म ने भी प्रभु को ‘ब्रह्मण्य’ शब्द से अलंकृत किया है-

“ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं, लोकानां कीर्तिवर्धनम्॥”

विष्णुसहस्रनाम का एक मंत्र तो प्रभु की ब्रह्मण्यता से भरा हुआ है। यथा-

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद्ब्रह्मा, ब्रह्म ब्रह्म विवर्धनः।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी, ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः॥

(वि०स०नाम ८४)

‘प्रभु ब्रह्मण्यदेव मैं जाना’ की शास्त्रीय पुष्टि के पश्चात् इसका व्यवहारिक दर्शन हमें ‘परशुराम संवाद’ में होता है। श्रीपरशुराम के परुष वचनों का श्रीराम नतमस्तक होकर जिस विनयशीलता से उत्तर देते हैं, वह अभूतपूर्व है। यथा-

“हमहिं तुम्हहिं सरबरि कसि नाथा।
कहहुं न कहाँ चरन कहँ माथा॥

देव एक गुन धनुष हमारे।
नवगुन परम पुनीत तुम्हारे॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे।
छमहुँ बिप्र अपराध हमारे॥
बिप्रवंश कै अस प्रभुताई।
अभय होय जो तुम्हहिं डेराई॥”

प्रभु श्रीराम का यह वाग्विलास मात्र नहीं है, वरन् वे प्रत्येक कार्य के आरंभ में विप्रों को प्रणाम कर, उनकी प्रभुता प्रतिपादित करते हैं। चाहे वे धनुर्भंग करें, या दूलहवेष में हों, या वनयात्रा में हों या मातलि के रथ पर आरुढ़ हों, या पुष्पकयान पर चढ़ रहे हों अथवा राज्य सिंहासनासीन हो रहे हों सर्वत्र वे विप्रचरणों में प्रणति निवेदित करते हैं। यही मन, वचन-कर्म-संपृक्त विप्रनिष्ठा कबंधवधो-परांत गंधर्व के समक्ष प्रकट होती है। यथा-

मन क्रम वचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि शिव, बश ताके सब देव॥

मा० ३/३५

श्रापत ताड़त परुष कहंता।
बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ बिप्र शील गुन हीना।
शूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥
कहि निज धर्म ताहि समुझावा।
निज पद प्रीति देखि मन भावा॥

यद्यपि उक्त पंक्तियों के कारण तथाकथित प्रगतिवादी गोस्वामी जी को ब्राह्मणवादी कहते हैं, किन्तु हमारा निवेदन है कि यह संतकवि का निज वाक्य न होकर, स्पष्टतः उनके इष्ट का नानापुराण-सम्मत अभीष्ट निजधर्म है। प्रथम तीन पंक्तियों का भावार्थ भागवतोक्त इस श्लोक में देखिए-

ये ब्राह्मणान्मयिधिया क्षिपतोऽर्चयन्त-
स्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः।
वाण्यानुराग कलयाऽऽत्मजवद् गृणन्तः
सम्बोधयन्त्यहमिवाहमुपा हृतस्तैः॥

भाग० ३/१६/११

अर्थात् ब्राह्मण तिरस्कारपूर्वक कटुभाषण भी करे तो भी उसमें मेरी भावना करके प्रसन्नचित्त से तथा अमृतभरी मुसकान से युक्त मुखकमल से उसका आदर करते हैं तथा जैसे रुठे हुए पिता को पुत्र और आप लोगों को मैं मनाता हूँ उसी प्रकार जो प्रेमपूर्ण वचनों से प्रार्थना करते हुए उन्हें शांत करते हैं, वे मुझे अपने वश में कर लेते हैं। यथा-

‘मोहि समेत विरंचि शिब, बस ताके सब देव’।

वास्तव में भगवान् ने श्रापत में नारद जी, ताड़त में भृगु जी एवं परुष कहंता में परशुरामजी को सम्मान दिया है।

न जाने क्यों तथाकथित प्रगतिवादी गोस्वामीजी के पीछे ही क्यों पड़े? उन्होंने शास्त्र एवं नीति वाक्यों का ही यथास्थान समुचित प्रयोग किया है। उनके नायक तो धर्मरथ के विवेचन में स्पष्ट घोषणा करते हैं कि-

“कवच अभेद विप्र पद पूजा।

एहि सम विजय उपाय न दूजा॥”

यह तो उनका निजधर्म है, भला उन्हें कौन रोक सकता है? यही निजधर्म निज सिद्धांत के रूप में काकभुशुण्डि के समक्ष पूर्वतः बाललीला में ही प्रकट हो गया था-

“निज सिद्धांत सुनावऊँ तोही।

सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।

सबसे अधिक मनुज मोहि भाए॥

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी।

तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी॥

तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी।

ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा।

जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥

(मा० ७/८५-८६)

प्रभु श्री राम का यह निज सिद्धांत में धर्मशास्त्र सम्मत है यथा-

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धि जीविनः।

बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो, विद्वत्सु कृतबुद्धयः।

कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः॥

मनुस्मृति (१/९६-९७)

मनुस्मृति के अतिरिक्त श्रीमद्भागवतम् के श्रीकपिल-देवहुति संवाद (भाग० ३/२९/२८-३३) में भी पाषाण से ब्राह्मणपर्यन्त उत्तरोत्तर एतादृश श्रेष्ठता वर्णित है-

जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे।

तेषां बहुपदाः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात्॥

ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः।

ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः॥

अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान् स्वकर्मकृत्।

मुक्तसङ्गस्ततो भूयानदोग्धा धर्ममात्मनः॥

तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियार्थात्मा निरन्तरः।

मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्त कर्मणः॥

इसी कारण भगवान् ‘लक्ष्मणगीता’ में भक्ति के

सुगम पंथ का पथिक बनने हेतु विप्र चरणों की प्रीति को प्रथम साधन निरूपित करते हैं। यथा-

भगति कि साधन कहहुँ बखानी।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि फल कर पुनि विषय बिरागा।
तब मम धर्म उपज अनुरागा॥

(मा०३/)

वनवासावधि में श्रीलक्ष्मण के प्रति कथित इस रहस्य को वे अखिल भूमंडल के एक छत्र सम्राट् होते ही प्रथम राष्ट्र संबोधन में प्रजा के समक्ष एतादृश व्यक्त करते हैं-

भक्ति सुतंत्र सकल गुन खानी।
बिनु सत्संग न पावहिं प्रानी॥
पुन्य पुंज बिनु मिलति न संता।
सतसंगति संसृति कर अंता॥
पुन्य एक जग में नहिं दूजा।
मन क्रम वचन विप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा।
जो तजि कपट करइ द्विज सेवा॥

‘प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती’ का सर्वोत्कृष्ट शास्त्रीय प्रमाण भागवतोक्त भृगु की त्रिदेव परीक्षा में प्राप्त होता है। जब भगवान लक्ष्मी की गोद में चरण रखकर विश्राम कर रहे थे तब महर्षि भृगु पद प्रहार करते हैं। यथा-

“शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्य ताडयत्।”

(भाग० १०/८९/८)

किन्तु प्रभु के विप्र चरण प्रेम की पराकाष्ठा देखिए- ऐसा कहकर वे चरण सहलाने लगे-

“अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने।
इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन् स्वेन पाणिना॥”

(भाग० १०/८९/१०)

प्रभु की इस विप्रनिष्ठा के विपरीत यदि कोई ब्राह्मणेतर संत एवं संन्यासी भी विप्रों से चरण पुजाते हैं, तो मानस के दीर्घ-अनुभवी मनुष्येतर प्रवक्ता श्रीकाकभुशुण्डि जी के अनुसार वे अपना इहलोक एवं परलोक दोनों नष्ट करते हैं। यथा-

ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहिं।

उभयलोक निज हाथ नसावहिं॥

(मा० ७/१००/७)

यही सिद्धान्त कविकुलचूड़ामणि पूज्यपाद जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी श्रीरामभद्राचार्य जी महाराज का भी है।

इसका भी शास्त्रीय कारण यह है कि जगत में ब्राह्मण जन्म से ही श्रेष्ठ है। यदि वह तपस्या, विद्या, संतोष एवं भगवत्भक्ति से युक्त हो तब तो कहना ही क्या है। श्रुतदेव-प्रसंग में यह श्रीमद्भगवद्वाक्य है। यथा-

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान् सर्वेषां प्राणिनामिह।
तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः॥

(मा० १०/८६/५३)

एतावता, निगमागम सम्मत मानस जी में श्रीराम की विप्रनिष्ठा का आद्योपान्त वर्णन जहाँ ब्राह्मणों की तपस्या, साधना एवं श्रेष्ठता का स्पष्ट प्रमाण है, वहीं दूसरी ओर ब्राह्मणत्व से च्युत हो रहे। जात्योपजीवी ब्राह्मणों के लिए भी श्रीराम की यह विप्रनिष्ठा प्रेरणास्पद है। निश्चित रूप से वे अपने गरिमापूर्ण ब्रह्मवर्चस् की पुनः प्रतिष्ठा कर श्रीराम की विप्रनिष्ठा के पात्र बन सकते हैं। □□□

गोसेवा कीजिए और राष्ट्र को सुरक्षित-सम्पन्न बनाइये

□ श्रीजगदीश प्रसाद गुप्त (जयपुर)

गो-सेवा से राष्ट्र की सुरक्षा एवं सुख-सम्पन्नता सम्भव है-इसे आप मानें या न मानें। इतिहास साक्षी है कि जब तक गो सेवा भारत में रही तब तक यह भारत-भूमि सुरक्षित एवं सुख सम्पन्न बनी रही। त्रेता युग में प्रभु श्रीराम ने गो महत्ता को जाना, वे लाखों गाएँ दान में देते थे। वे अयोध्या नरेश थे, स्वयं गो सेवा कर नहीं सके। द्वापर युग में प्रभु गोपाल बने, छोटी अवस्था से गायों की सेवा करने लगे, गायों को जंगल में चराने ले जाते और सायंकाल उनके नाम पुकार-पुकार कर, इकट्ठी कर गोकुल लाते। वेद, पुराण, स्मृति में गो-सेवा पर विस्तृत व्याख्या की गई है। सभी ऋषि-मुनियों, सन्तों और राजा-महाराजाओं ने गो-सेवा की है। आर्थिक दृष्टि से गौ सदैव उपयोगी रही है और इनसे प्राप्त दूध-दही, घी, मूत्र और गोमय (गोबर) स्वास्थ्यवर्धक रहे हैं। गो हत्या निजी स्वार्थ से प्रारम्भ हुई और आज इसने विनाश का प्रचण्ड रूप धारण कर लिया है। गायों का संवर्धन और संरक्षण एक नितान्त आवश्यकता बन चुकी है। यह संकीर्ण धारणा है कि वृद्ध-गायों की हत्या कर देनी चाहिए क्योंकि वे अनुपयोगी हो गई हैं-ऐसा गोहत्या के समर्थकों की ओर से देश में एक हौआ खड़ा किया हुआ है। पूछा जाए, गायों की विविध उपयोगिताओं को देखते हुए देश में कोई अनुपयोगी गाय है ही नहीं-दूध देना ही बन्द

होता है, मूत्र, गोबर और मरने के बाद अस्थि व चर्म की उपयोगिता तो बनी ही रहती है। दूध न देने वाली गाय पर होने वाले व्यय से कहीं अधिक प्राप्ति ही रहती है, देख लीजिए, गणना कर लीजिए।

गोसेवा की भावना से (गोसेवा करने से) गोरक्षा होती है, यह शाश्वत सत्य है। गोसेवा से हमारी और हमारे राष्ट्र की सुरक्षा रहती है, यह कोरी कल्पना की बात नहीं है, श्रद्धा और विश्वास की बात भी है, यथार्थ भी है। “सुरक्षा” का तात्पर्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति और उपयोगिता से आर्थिक-वृद्धि से नहीं है, वस्तुतः आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा से ही है। इस यथार्थ से हम वंचित होते रहे, जब से गोसेवा छोड़कर गो-हत्या प्रमुख बना दी गई। इस कलयुग को क्या कहें-जहाँ चोरी, डकैती और आत्म हत्या ही नहीं, रोजाना जन-हत्याएं हो रही हैं और आतंकवाद फैल रहा है।

त्रेतायुग में, श्रीचक्रवर्ती महाराज दशरथ हुए हैं, वे अयोध्या में थे। उस अयोध्या से आतंकवादी रावण भी घबड़ाता था। उसका कभी साहस नहीं हुआ कि वह अयोध्या में आतंक फैलाये, गो-ब्राह्मणों की हत्या करे। सूर्यवंश के महाराज मान्धाता के पाशुपतास्त्र से पराजित रावण ने उन्हें वचन दिया था कि वह अयोध्या पर कभी भी आक्रमण नहीं करेगा। उसी रावण ने ब्रह्मलोक जाते समय महाराज अनरण्य

को मार्ग में रोकर युद्ध के लिए विवश किया और आहत होकर देह त्याग करते समय महाराज अनरण्य ने उसे शाप दिया कि रघुवंशी ही उसका वध करेगा, तब से रावण अयोध्या की ओर से सशंक हो गया। महाराज रघु के समय रावण ने अयोध्या पर आक्रमण नहीं किया लेकिन उनसे द्वन्द्व-युद्ध करना चाहा। महाराज उस समय नगर में नहीं थे, महामन्त्री ने किसी दूसरे समय आने को कहा। अभिमानी रावण यह सन्देश देते हुए चला गया कि महाराज रघु उसे शीघ्र ही कर भेज दें अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। महाराज रघु ने नारायणास्त्र चलाकर रावण को परास्त किया। महाराज रघु के बाद उनके पुत्र अज अयोध्या-नरेश हुए। इनके समय रावण अयोध्या आया और देखा कि महाराज अज ने सरयू स्नान करते समय पश्चिम दिशा में जल मंत्रित कर फेंका। रावण यह जानकर कि मन्त्रित जल से एक योजन दूर चरती हुई एक गौ की एक व्याघ्र के आक्रमण से रक्षा की गई और व्याघ्र को बाणों से विद्धकर मार दिया। महाराज अज के जीवनकाल में रावण अयोध्या से भयभीत रहा। जब महाराज अज के बाद दशरथ जी अयोध्या नरेश हुए, रावण अयोध्या आकर द्वन्द्व-युद्ध करना चाहा। द्वन्द्व युद्ध से पहिले महाराज दशरथ ने उसका बल परीक्षण किया कि उनके हाथों से रोके गए नगर-द्वार को रावण बाहर से बल लगाकर खोले। रावण नगर द्वार खोल न सका और अयोध्या सदैव अजेय बनी रही। यहाँ के सभी सूर्यवंशी व

रघुवंशी महाराज यशस्वी, तेजस्वी, समृद्धशाली, शक्तिशाली एवं सुखी सम्पन्न रहे क्योंकि उन्होंने अपनी श्रद्धा व भक्ति से भरपूर गो सेवा की थी।

महर्षि वसिष्ठ जी की गो सेवा व भक्ति सर्व विदित है। वे स्वयं अपने हाथों नित्य गौ की सेवा करते थे। अपने आश्रम में देवी अरुन्धती और स्वयं वे नित्य गौ की पूजा करते थे। गौ की कितनी अनन्त महिमा है तथा गो-सेवा क्या है, उसकी शक्ति कितनी प्रबल होती है वे भलीभाँति जानते थे। इसलिए वे नित्य गायों का सान्निध्य चाहते थे। सर्वविदित है कि महर्षि वसिष्ठ जी ने अपनी चित कबरी होम धेनु (कामधेनु) शबला गौ के प्रभाव से राजर्षि विश्वामित्र जी का चतुरङ्गिणी सेना सहित विशिष्ट आतिथ्य किया था। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में वर्णन है कि महर्षि वसिष्ठ जी के आग्रह पर चितकबरे रंग की उस कामधेनु ने जिसकी जैसी इच्छा थी, उसके लिए वैसी ही सामग्री जुटा दी ईख, मधु लावा, श्रेष्ठ आसव, पानक रस आदि नाना प्रकार के बहुमूल्य भक्ष्य पदार्थ प्रस्तुत कर दिए। गरम-गरम भात के पर्वत के सदृश्य ढेर लग गये। मिष्ठान्न (खीर) और दाल भी तैयार हो गयी। दूध, दही और घी की तो नहरें बह चलीं। भाँति-भाँति के सुस्वादु रस, खाण्डव तथा नाना प्रकार के भोजनों से भरी हुई चाँदी की सहस्रों थालियाँ सज गईं। सभी लोग तृप्त हुए। (बालकाण्ड-५३ सर्ग १ से ६ तक) गो के इस दिव्य विलक्षण प्रभाव को देखकर विश्वामित्र जी ने

उस गौ को देने की माँग की और अनेक प्रकार के प्रलोभन गाय के बदले में दिए लेकिन महर्षि वसिष्ठ जी अपनी गाय को देने को तैयार नहीं हुए। विश्वामित्र जी राजबल से उनकी गाय को घसीट कर ले जाने लगे। उस समय वह शबला गाय मेघ के समान गम्भीर स्वर से रोती, चीत्कार करती हुई, महर्षि वसिष्ठ जी के पास भागती हुई, बोली-“आपने मुझे क्यों दे दिया?” महर्षि वशिष्ठ जी कहने लगे- “शबले! मैंने तुम्हें नहीं दिया, यह राजा बलवान है। मेरी बात नहीं मानता और तुम्हें बलपूर्वक घसीटता है। तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं तुम्हें जाने को नहीं कहता।” इस पर शबला ने अपने शरीर से अनन्त संख्या में यवन, खस, पल्लव, हूण आदि सैनिकों को उत्पन्न किया, जिन्होंने विश्वामित्र की सेना को नष्ट कर दिया। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के ५४वें सर्ग के १८ से २३ एवं ५५वें सर्ग के १ से ४ में इसका अलौकिक वर्णन हुआ है।

स्पष्ट है कि गोसेवा से गोरक्षा तो होती ही है, लेकिन वह हमें और हमारे राष्ट्र को भौतिक सम्पदा प्रदान करती है और समय आने पर रक्षा भी करती है। प्रभु श्रीराम चौदह वर्ष के वनवास पर जाते समय अपने कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जी से उनके आश्रम पर आकर मिले और अनुज और श्रीवैदेही सहित गुरुदेव, गुरुपत्नी एवं ब्राह्मणों को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करके चलने ही लगे कि महर्षि वसिष्ठ जी की कामधेनु नन्दिनी अपने बछड़े के साथ हुंकार करती आगे आ गयी। दोनों भाइयों ने भूमि पर पड़कर उस गौ को दंडवत प्रणिपात किया

तो नन्दिनी ने हुंकारकर उनका सिर सूंघा। अपने पदों में मस्तक रखती हुई श्रीवैदेही के सिर पर गौ ने धीरे से ग्रीवा रखी। महर्षि वशिष्ठ प्रसन्न होकर बोले- “वत्स रामभद्र! मैं इसके संकेत भली प्रकार समझता हूँ। यह तुम्हें महान विजय प्राप्त करने का और जनकुमारी को सौभाग्यवती रहने का अशीर्वाद दे रही है।” प्रभु श्रीराम ने अंजलि बाँधकर गौ से प्रार्थना की- “अम्ब! राम अयोध्या की रक्षा का दायित्व आप पर छोड़ता है।” नन्दिनी ने अपने दक्षिणपाद के खुर से भूमि कुरेद कर गर्दन हिलाते हुए अपनी स्वीकृति दी। महर्षि ने कहा- “त्रिभुवन के अद्वितीय अस्त्रज्ञ विश्वामित्र की उग्रतम तपस्या से प्राप्त दिव्यास्त्र शक्ति भी नन्दिनी की एक हुंकृति के सम्मुख निष्प्रभ हो गयी थी। नन्दिनी ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। सुर-असुरों की सम्मिलित शक्ति भी अब अयोध्या का अनिष्ट करने में असमर्थ हैं। तुम बन में जाते हुए भी राज्य को निष्कण्टक करके जा रहे हो। अब इधर से निश्चिन्त रहो। वत्स! तुम्हारे लौटने तक अब अयोध्या की ओर दृष्टि उठाने वाला अपना विनाश आमन्त्रित करेगा।”

भरतजी ननिहाल से लौटे। राज्याभिषेक स्वीकार नहीं किया, अगले दिन अपने अग्रज श्रीराम को लौटाने वन को चलने लगे। उन्होंने सबको सावधान किया- “अयोध्या की रक्षा की चिन्ता व्यर्थ है। समस्त संसार की रक्षा में समर्थ रघुकुल गुरु के रहते दूसरा कोई क्यों चिन्ता करे?” महर्षि वशिष्ठ जी ने भरत को हृदय से लगाया- “वत्स भरत! अयोध्या की रक्षा के सम्बन्ध में तुम निश्चिन्त रह

सकते हो। जब यजमान असमर्थ हो, संकटापन्न हो, रक्षा का दायित्व पुरोहित पर आ जाता है। अब से राम के लौटने तक अयोध्या की ओर कुदृष्टि उठाने वाले को वसिष्ठ की कामधेनु नन्दिनी क्षमा नहीं करेगी।”

जब भरत-शत्रुघ्न ने कुलगुरु, महर्षि वसिष्ठ जी से रथ पर आसीन होने की प्रार्थना की, महर्षि जी ने रक्त श्वेत कर्बुरा, श्वेत तिलक मस्तका, अपनी नन्दिनी के सम्मुख दण्डवत करके हाथ जोड़कर खड़े हो गये- “नन्दिनी! तुम सर्व समर्था हो। अयोध्या नगर, राज्य प्रजाकोष एवं गृहों की रक्षा का दायित्व तुम पर है। जब तक श्रीराम वन से लौट नहीं आते, यह रक्षा का भार तुम स्वीकार कर लो।” नन्दिनी ने हुंकार की और दो पद आगे आकर उसने महर्षि के करों को सूँघ लिया। महर्षि ने गौ को पुनः दंडवत प्रणिपात करके भरत से कहा- “देवता, दैत्य, दानव राक्षस, यक्षादि सब मिलकर भी नन्दिनी की शक्ति के सम्मुख तुच्छ ही रहते हैं। अब वह मूर्ख होगा और अपना विनाश आमन्त्रित करेगा जो अयोध्या को घर्षित करने का स्वप्न देखेगा। मैंने विश्वामित्र के विरुद्ध नन्दिनी की हुंकार से लक्ष दिव्य सैनिक प्रकट होते देखा है। श्रीराम के लौटने तक अयोध्या अयोध्या हो चुकी है। वत्स भरत! अब तुम निश्चिन्त रह सकते हो।”

भरत जी प्रभु श्रीराम के आग्रह से अयोध्या लौट आए और वे नन्दिग्राम में तपस्वी बन गये। अपने भाई शत्रुघ्न से सस्नेह कहा- “शत्रुघ्न! किसी

नरेश की तो चर्चा ही व्यर्थ है, कोई असुर भी इतना अज्ञ नहीं कि अयोध्या पर आक्रमण करके अपने विनाश को आमन्त्रण दे। कुलगुरु ने साम्राज्य की सुरक्षा का दायित्व चौदह वर्ष के लिए अपनी कामधेनु नन्दिनी को सौंप दिया है, यह बात अब पृथ्वी पर पूर्णतः प्रचारित हो चुकी है, नन्दिनी की असीम शक्ति से कोई अपरिचित नहीं है। कोई धृष्टता करे तो कुलगुरु दो क्षण भी उसे क्षमा नहीं करेंगे। अतः रक्षा की ओर से तो हम दोनों को उन्होंने निश्चिन्त ही कर दिया है।

महर्षि वशिष्ठ जी गो तत्त्ववेत्ताओं के आद्य आचार्य हैं। महाभारत में वर्णित है कि उन्होंने राजा सौदास को गोतत्त्व और गोसेवा का उपदेश दिया है। गो महिमा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है-

गावः प्रतिष्ठा भूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्।

गावो भूतं च भव्यं च गावः पुष्टि सनातनी।।

महाभारत, अनु० ७८/५-६

(अर्थात्- गौएँ समस्त प्राणियों की प्रतिष्ठा (आधार) हैं और गौएँ ही उनके लिए महान मंगल की निधि हैं। गौएँ ही भूत और भविष्य हैं। गौएँ ही सब समय पुष्टि का साधन हैं।)

इस आलेख को विराम देते हुए यही निवेदन शेष है-

**गोसेवा कीजिए और राष्ट्र को
सुरक्षित-सम्पन्न बनाइये।**

□□□

गतांक से आगे

शिखा की वैज्ञानिकता का रहस्य (विज्ञान और आयुर्वेद)

□ पूज्यपाद पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत

(१०) वर्तमान वैज्ञानिकों ने अन्वेषण के बाद अब यह जाना है कि सिर के पिछले भाग में उन नस-नाड़ियों का केन्द्र है, जो आंखों में प्राप्त होती हैं। उनकी रक्षा यहाँ ठहरे हुए पर्याप्त-परिमाण के केशों से होती है। वर्तमान वैज्ञानिकों ने अब यह बात जानी है; परन्तु हमारे ऋषि-महर्षियों ने प्राचीन काल से ही शिखा रखने का नियम बना रखा है। शल्य विद्या के सभी अंग्रेजी पुस्तकों में डाक्टरों ने सिर के उस स्थल में जहाँ शिखा रखी जाती है- एक मर्मस्थल माना है, जिसे अंग्रेजी में Pineal Gland (पिनियल ग्लेण्ड) नाम से कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जिस स्थल पर शिखा रखी जाती है; उसी स्थल के नीचे एक ग्रन्थि है जिसे 'पिचुइटी' नाम से कहा जाता है; जो शरीर की पुष्टि तथा वृद्धि में बहुत सहायता करती है। प्रकृति ने सिर में जो बाल उत्पन्न किये हैं; उनका तात्पर्य शरीर की भीतरी कोमल वस्तुओं का संरक्षण है। कपालशास्त्र के अनुसार भी उक्त स्थान में आत्मोन्नति का केन्द्र है। एक कपालशास्त्री ने यह सिद्ध किया है कि उस केन्द्र में केशराजि की स्थापना से आत्मोन्नति की रक्षा होती है।

आयुर्वेद के अनुसार मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि इन पाँच भेदों के ८८ साधारण मर्म होते हैं; १९ विशेष मर्म होते हैं; इस प्रकार १०७ मर्म कहे गये हैं। इसमें ११ मांस के, ४१ शिराओं (नसों) के, २७ स्नायुओं के, ८ अस्थियों (हड्डियों) के २० सन्धियों के मर्म होते हैं इस प्रकार १०७ मर्म 'सुश्रुत-संहिता' (शरीर-स्थान ६/४) में कहे गये हैं। १९ संख्या के विशेष मर्मों में एक का नाम 'अधिप' होता है, जहाँ केशों का आवर्त होता है। उसके नीचे नाड़ियों की संधि होती है। थोड़े आघात से भी यहां के मर्मस्थलों

में हानि की सम्भावना रहती है; बल्कि कभी तो मृत्यु की सम्भावना भी रहती है। इसी कारण 'सुश्रुत-संहिता' के शरीर स्थान में कहा है- 'मस्तकाभ्यन्तरत उपरिष्ठात् शिरासन्धिसन्निपातो रोमावर्तोऽधिपतिः; तत्रापि सद्य एव (मरणम्) (६/२०) 'आन्तरो मस्तकस्योर्ध्व शिरासन्धिसमागमः। रोमावर्तोधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून्' (अष्टाङ्गहृदय, शरीरस्थान)।

इस पर श्री अरुणदत्त ने लिखा है- 'मस्तकस्य अभ्यन्तरतो यः स्थितः, तथा ऊर्ध्वं प्रकृतत्वान्मस्तकस्यैव उपरि शिरासन्धिसमागमः शिरासन्धीनां सन्निपातो रोमावर्तलक्षणः; सोधिपो नाम मर्मविशेषः धर्मगमाधिपो यथार्थनामा। तदायत्तानि हि सर्वाणि मर्मणीत्यर्थः। सोऽधिपो विद्धो सद्योऽसून् हरति, पुरुषं मारयतीत्यर्थः'। आशय यह है कि स्वामी के दुःख में सब नौकर दुःखी होते हैं; जैसे सेनानायक के क्षत-विक्षत होकर गिरने पर सब सेना के पांव उखड़ जाते हैं; इसी प्रकार इस 'अधिपति' नामक मर्म-सम्राट् में थोड़ा भी आघात होने पर सारे मर्मस्थानों में शिथिलता हो जाती है। उस समय उपचार न करने पर मृत्यु तक भी हो सकती है। जैसे राजा सैनिकों की अपेक्षा सेनानायक के संरक्षणार्थ अधिक अवधान देता है; वैसे ही मनुष्यमात्र को सब मर्मों की अपेक्षा 'अधिप' मर्म की रक्षा तो बहुत सावधानी से करनी चाहिये। उसकी रक्षा होवे इस पर उपाय अपेक्षित है। प्राचीन महर्षियों से उद्धावित वह उपाय ही 'शिखा' है। शिखा के अतिरिक्त कोई भी सरल शास्त्रीय उपाय नहीं है, जिससे दिन-रात एवं प्रतिक्षण अधिप-मर्म की रक्षा हो सके। इस उपाय के आश्रयण से चाहे गरीब हो वा साहूकार-सभी समान लाभ प्राप्त कर सकते हैं। हमारे पूर्वजों ने जो सुगम एवम् अपूर्व

युक्ति बनाई है; वैसी युक्ति कोई भी नहीं बन सकती। इस तात्पर्य को न जानकर आजकी सभ्य (?) मंडली अपनी शिखा को कटवाकर शिखाधारिणी मण्डली का उपहास करती है, यह उसकी अविद्या दयनीय है। जो इस विषय के अन्य उपाय किये जाते हैं, वे खर्चीले एवं अवैध हैं, पर हमारे प्राचीनों से उद्धावित उपायों में खर्च न होना, परतन्त्रता न होनी—यह एक भारी विशेषता होती थी। फिर साथ वह जातीय चिह्न भी बन जाता था। इस प्रकार 'एका क्रिया द्वयर्थकरी' नहीं नहीं—'अर्थकरी प्रसिद्धा' हो जाती है।

प्राचीन काल में ब्रह्मचर्याश्रम में कुमार यहां पर केशजूटक रखकर सिर पर अधिक विद्युत को उत्पन्न करते थे। शिखा रखने से आयु की वृद्धि होती है; सैनिकों को धूप वा सनस्ट्रोक से बचाने के लिए टोप दिये जाते हैं। वे पूर्ण-केशयुक्त शिखा रखें तो उन्हें टोपियों की आवश्यकता ही न रहे। इस शिखा का परिमाण गोखुर—इतना होता है, जिससे शीतकाल में शीत से, भयानक गर्मी में गर्मी से और वर्षा ऋतु में जलवर्षण के आघात से साधारणतः रक्षा होती है।

एक विचार

(११) कहा जाता है कि— 'जो शीत-प्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रखे और जो अतिउष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये, क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है' (स० प्र० १० समु० १६२ पृष्ठ) यह विचार उक्त अनुसन्धान से अपूर्ण सिद्ध होता है; क्योंकि—शिखामुण्डन से ही उस मर्मप्रदेश में धूप जल्दी प्रभाव कर देती है। गोखुरमुण्डन से ही उस मर्मप्रदेश में धूप जल्दी प्रभाव कर देती है। गोखुरपरिमाण वालों के वहां रखना पर तो जैसे बाहरी शीत से रक्षा होती है; वैसे ही बाहरी ताप से भी रक्षा होती है। इसका अनुभव स्वयं भी किया जा सकता है। जो लोग गर्मी में सभी बालों को कटवाते हैं; दो-तीन दिन उन्हें गर्मी अधिक अनुभूत होती है। जो

बाल नहीं कटवाते; उनको वैसी ऊष्मा प्रतीत नहीं होती, बल्कि बाहरी गर्मी से रक्षा ही होती है। नहीं तो फिर उनके अनुयायियों को गर्मी में बुद्धिमन्दता के डर से अपनी स्त्रियों या पढ़ रही हुई लड़कियों के बाल भी कटवाने पड़ेंगे। अथवा गर्मी में या गर्म देश में बालों का कटवाना मान भी लिया जाय तो वह मस्तिष्क के तालु-प्रदेश में कुछ लाभकारी हो सकता है, पर शिखा के स्थान में नहीं। इनमें प्राचीन एवं अर्वाचीन विद्वान् प्रमाण हैं। इस बात का आविष्कार करने वाले तो वैद्यक के विद्वान थे; उन्होंने 'सालम-मिश्री' आदि की ओषधियाँ भी जान रखी थीं तो यहाँ भी उन्हें कोई ओषधि लिख देनी चाहिये थी; जिससे गर्मी हट जाती; पर उन्होंने शिखा पर ही आक्रमण कर दिया; खेद!!! प्राचीन ऋषि, मुनि तपस्वी जो जटाधारी थे; क्या उनकी बुद्धि न्यून थी? उन्होंने बड़े-बड़े ग्रन्थ कैसे बनाए? 'दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः' (अथर्व० ११/५/६) इससे वेद ने ब्रह्मचारी के लिए दीर्घकेश की स्थापना कही है; इससे वेद को उससे ब्रह्मचारी की बुद्धि की मन्दता इष्ट नहीं।

उक्त स्थल में शिखा-छेदन मनु जी के 'केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते। राजन्यवन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः' (२/६५) इस पद्य के अनुवाद के अवसर पर ही 'स० प्र०' में कहा है; परन्तु मनु जी को वहाँ ऐसा अभिप्राय विवक्षित नहीं। न वहाँ ग्रीष्म का नाम है, न ही केशान्त संस्कार में शिखा के छेदन का गन्ध ही है। यदि यहाँ गर्मी का कारण है तो ब्राह्मण का १६वें वर्ष में ही मुण्डन कैसे कहा है? क्या पहले वा पीछे क्या गर्मी नहीं लगती? शूद्र के लिए तो वैसा करने की आज्ञा ही नहीं है; तो क्या उसे सारी आयु गर्मी ही नहीं लगती? इससे यह बात ठीक नहीं। न मालूम मनु जी के उक्त पद्य से यह बात कैसे निकाली गई? स्वयं उन्होंने स० प्र० के ११वें समु० २४४ पृष्ठ में लिखा है— 'यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़कर मुसलमान-ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है'।

क्रमशः.....

धर्मशास्त्रों में आचरणीय सूक्तियाँ

प्रस्तुति-आचार्य चन्द्रदत्त 'सुवेदी'

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
लोकहिंसाविहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम्॥

(वा०रा०, यु०का० ११५/४३-४४)

आर्य (श्रेष्ठ) पुरुष को चाहिये कि वह पापियोंपर, दुष्टों पर अथवा जो मार डालने योग्य हैं- ऐसे लोगों पर भी दया ही करे; क्योंकि अपराध किससे नहीं बनते? जो लोगों की हिंसा करने में ही प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, जो अत्यन्त निर्दय एवं पापाचारी हैं तथा जो अभी-अभी पाप करने में लगे हैं- ऐसे लोगों का भी अनिष्ट न करे।

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं

कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।

तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः

कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः॥

(श्रीमद्भा० ७/९/४५)

स्त्री-सम्भोगादि जो गृहस्थ के सुख हैं, वे अत्यन्त तुच्छ ही नहीं, अपितु हाथों को परस्पर खुजलाने के समान परिणाम में अत्यन्त दुःखरूप हैं; परन्तु बहुत दुःख पाने पर भी अज्ञानी जीव इन विषय-सुखों से अघाते नहीं। कोई विवेकी पुरुष ही खुजलाहट की भाँति कामादि के वेग को भी सह लेता है।

अहर्निशं श्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात्।

अद्रोहवत्या बुद्ध्या च पूर्व जन्म स्मरेद् बुधः॥

(स्क० पु०, का० ख० ३८/८९)

रात-दिन वेदों का पाठ करने से, बाहर-भीतर की पवित्रता और सदाचार सेवन से और द्रोहशून्य बुद्धि से बुद्धिमान् मनुष्य पूर्वजन्म की बातों को स्मरण कर सकता है।

दयालुरमदस्पर्श उपकारी जितेन्द्रियः।

एतैश्च पुण्यस्तम्भैश्च चतुर्भिर्धायते मही॥

(शि०पु०, कोटिरु० सं० २४/२६)

दयालु मनुष्य, अभिमानशून्य व्यक्ति, परोपकारी और जितेन्द्रिय-ये चार ऐसे पवित्र खंभे हैं, जो पृथ्वी को थामे हुए हैं।

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।

नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥

(बृहन्ना० पु० ६०/४३)

विद्या के समान दूसरा नेत्र नहीं है, सत्य के समान कोई तप नहीं है, राग के समान कोई दुःख नहीं है और त्याग के समान कोई सुख नहीं है।

धर्मः कामदुग्धा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्।

विद्या मोक्षकरी प्रोक्ता तृष्णा वैतरणी नदी॥

(ब्रह्मना० पु० २७/७२)

धर्म ही कामधेनु के समान सारी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला है, संतोष ही स्वर्ग का नन्दन-कानन है, विद्या (ज्ञान) ही मोक्ष की जननी है और तृष्णा वैतरणी नदी के समान नरक में ले जाने वाली है।

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।

ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः।

सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्॥

(वायु पु० ५७/११७)

किसी भी प्राणी के साथ द्रोह न करना, लोभ से दूर रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना, स्वधर्मपालन के लिये कष्ट सहना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सच बोलना, दुखियों से सहानुभूति रखना, अपराधी को क्षमा कर देना और कष्ट पड़ने पर धैर्य धारण करना- सनातन धर्म की जड़ यही है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।

नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।

(अग्नि ४३/२३)

अच्युत, अनन्त एवं गोविन्द- इन नामों का उच्चारण ही एक ऐसी दवा है, जिससे सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। मैं (धन्वन्तरि) सत्य के साथ यह कह रहा हूँ।

यत् क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं

यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य।

प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके

मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य।।

(वामनपु० ४३/८९)

क्रोधी मनुष्य जो कुछ भी यजन-पूजन करता है, जो कुछ नित्यप्रति दान करता है, जो कुछ तपश्चर्या करता है और जो कुछ भी हवन करता है, उसका इस लोक में उसे कोई फल नहीं मिलता, उस क्रोधी का सब कुछ किया कराया व्यर्थ होता है।

वरं प्राणस्त्याज्या न बत परहिंसा त्वभिमता

वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतम्।

वरं क्लीबैर्भाव्यं न च परकलत्राभिगमनं

वरं भिक्षार्थित्वं न च परधनानां हि हरणम्।।

(वामनपु० ५९/२९)

स्वयं मर जाना अच्छा है, किन्तु किसी दूसरे जीव की हिंसा कदापि मान्य नहीं होनी चाहिये। चुप हो रहना अच्छा है, पर झूठ बोलना किसी भी हालत में ठीक नहीं। नपुंसक होकर रहना अच्छा है, किन्तु परस्त्रीगमन कदापि वाञ्छनीय नहीं। इसी प्रकार भीख माँगकर जीवन बिताना दूसरे के धन को हड़पने की अपेक्षा कही उत्तम है।

नाश्चर्यं यन्न पश्यन्ति चत्वारोऽमी सदैव हि।

न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति।

न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति।।

नीचे लिखे चार व्यक्ति सदा ही अन्धे बने रहते हैं- इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जैसे जन्म के अन्धे को नहीं सूझता, उसी प्रकार रागान्ध व्यक्ति भी देख नहीं पाता। इसी प्रकार घमंड में चूर व्यक्ति भी अंधा होता है और लोभी मनुष्य को भी आँख नहीं होती।

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां

सुतदुहितृकलत्राणभारार्दितानाम्।

विषमविषयतोये भज्जतामप्लवानां

भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम्।।

(वामनपु० ९४/२९)

जो मनुष्य संसाररूपी समुद्र में पड़कर सुख-दुःख, हर्ष-शोक, गर्मी-सर्दी आदि पवन के झकोरों से पीड़ित रहते हैं, लड़के-लड़की, पत्नी आदि की रक्षा के बोझ से दबे रहकर तथा तैरने का कोई साधन न पाकर विषयरूपी अगाध जल में डूबते-उतरते हैं, ऐसे लोगों की भगवान् विष्णु ही नौका बनकर रक्षा करते हैं।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यस्य ते हितमिच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्ति तम्॥

(महा० उद्यो० ३५/४४)

देवतालोग चरवाहे की भाँति डंडा लेकर हमारी रक्षा थोड़े करते हैं। वे तो जिसका भला करना चाहते हैं, उसे उत्तम बुद्धि (समझ) दे देते हैं।

न कालो दण्डमुद्यम्य शिरः कृन्तति कस्यचित्।

कालस्य बलमेतावद् विपरीतार्थदर्शनम्॥

(महा० स० ८१/११)

कालभगवान् डंडा उठाकर किसी का सिर थोड़े ही तोड़ देते हैं। काल का बल तो इसी में है कि वह वस्तु के स्वरूप को विपरीत करके दिखा देता है और यही उसके विनाश का कारण होता है।

धर्म यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुवर्त्म तत्।

अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः॥

(महा० वनपर्व १३१/११)

जो धर्म किसी दूसरे धर्म का विरोधी होता है, वह धर्म नहीं, कुमार्ग है; धर्म वही है, जिसका किसी भी दूसरे धर्म से विरोध नहीं होता।

नरस्य बन्धनार्थाय शृङ्खला स्त्री प्रकीर्तिता।

लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते॥

(दे० भा० १६/४१)

मनुष्य को मोहरूपी बन्धन में डालने के लिये स्त्री को ही साँकल कहा गया है। लोहे की बेड़ी से जकड़ा हुआ मनुष्य तो छूट भी सकता है, पर स्त्री के मोहजाल में फँसे हुए मनुष्य का छुटकारा नहीं है।

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।

तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः॥

(१/१४/४)

वेद शास्त्रों का अध्ययन कर लेने पर भी जिनका सांसारिक सुखों में राग (प्रेम) बना हुआ है, उनसे बढ़कर मूर्ख कोई नहीं है। वे तो कुत्ते, घोड़े और सूअर जैसे ही हैं।

द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत् करोति शुभं नरः।

विपरीतं भवेत् तत् तु फलकाले नृपोत्तम॥

देशकालक्रियाद्रव्यकर्तृणां शुद्धता यदि।

मन्त्राणां च तदा पूर्ण कर्मणां फलमश्नुते॥

दूसरों से द्रोह करके कमाये हुए धन से मनुष्य जो यज्ञ, दान आदि शुभ कर्म करता है, फल का समय आने पर उसका परिणाम विपरीत अर्थात् अशुद्ध होता है। स्थान, समय, क्रिया, द्रव्य, कर्ता और मन्त्र—इन सबके शुद्ध होने पर ही किसी सकाम अनुष्ठान का पूरा-पूरा फल मिलता है।

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत् त्यक्तुं न शक्यते।

स सद्भिः सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥

कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः।

मुमुक्षां प्रति कर्तव्यः सैव तस्यापि भेषजम्॥

(मार्क० पु० ३७/२४-२५)

आसक्ति का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए; परंतु यदि वह न छूट सके तो संत-महात्माओं के प्रति आसक्ति करे। सत्पुरुषों के प्रति किया हुआ प्रेम ही संसारासक्ति की एकमात्र औषध है। इसी प्रकार कामना भी सब प्रकार से हेय है; परंतु यदि कामना न छूटे तो मोक्ष की इच्छा जाग्रत् होने की कामना करे; क्योंकि मोक्ष की कामना ही अन्य सारी कामनाओं से छूटने की एकमात्र दवा है।

धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम्।

यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्॥

(मार्क० पु० १३१/२५)

जो मनुष्य शरण चाहने वाले दुखिया को आश्रय नहीं देता, चाहे वह शत्रुपक्ष का ही क्यों न हो, उसके जीवन को धिक्कार है।

न तथा शीतलसलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी॥

(भवि० पु० ब्राह्मपर्व ७३/४८)

ठंडा जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य को उतनी आह्लादजनक नहीं होती, जितनी मीठी वाणी।

अन्धं तमो विशेष्युस्ते ये चैवात्महनो जनाः।
भुक्त्वा निरयसाहस्रं ते च स्युर्ग्रामसूकराः॥
आत्मघातो न कर्तव्यस्तस्मात् क्वपि विपश्चिता।
इहापि च परत्रापि न शुभान्यात्मघातिनाम्॥

(स्क० पु० काशीख० १२/१३)

आत्महत्यारे लोग घोर नरकों में जाते हैं और हजारों नरकयातनाएँ भोगकर फिर देहाती सूअरों की योनि में जन्म लेते हैं। इसलिए समझदार मनुष्य को कभी भूलकर भी आत्महत्या नहीं करनी चाहिये। आत्मघातियों का न इस लोक में और परलोक में ही कल्याण होता है।

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।

सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥

(वा० रा० यु० का० ८७/२३)

पराये का अधिकार छीन लेना, परस्त्री-संसर्ग और अपने हित-मित्रों से अत्यधिक सशङ्कित रहना- ये तीना दोष सर्वनाश करने वाले हैं।

पितुरर्थे हता ये तु मातुरर्थे हतास्तथा।
गवार्थे ब्राह्मणार्थे वा प्रमदार्थे महीपते॥
भूम्यर्थे पार्थिवार्थे वा देवतार्थे तथैव च।
बालार्थे विकलार्थे च यान्ति लोकान् सुभास्वरान्॥

(बृहन्ना० महापु० उत्तरभा० ३३/६३-६४)

जो लोग पिता के लिये, माता के लिये, गाय के लिये, ब्राह्मण के लिये, युवती स्त्री की रक्षा के लिये, अपनी जन्मभूमि के लिए, राजा के लिये, देवता के लिये, बालक के लिये अथवा अङ्गहीन के लिए प्राण गँवा देते हैं, उन्हें अत्यन्त प्रकाशयुक्त (स्वर्गादि) लोकों की प्राप्ति होती है।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य-

स्तस्मिन्स्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।

मायाचारो मायया बाधितव्यः

साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

(म० भा०, शा० प० १०९/३०)

जो मनुष्य जिसके साथ जैसा बर्ताव करता है, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करे-यही धर्मसंगत है। कपटी को कपट के द्वारा परास्त करे और सच्चरित्र के साथ साधुता का व्यवहार करना चाहिये।

□□□

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥
बिगड़ी जनम अनेक की संभलै अब ही आज। होय राम को राम भज तुलसी तज कुसमाज॥

व्रतोत्सवतिथिनिर्णयपत्रक

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष/सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
द्वादशी	गुरुवार	चित्रा	4 जून	चम्पक द्वादशी
त्रयोदशी	शुक्रवार	स्वाति	5 जून	प्रदोष व्रत
चतुर्दशी	शनिवार	विशाखा	6 जून	—
पूर्णिमा	रविवार	अनुराधा	7 जून	सत्यनारायण व्रत वट सावित्री व्रत पूजन

आषाढ़ कृष्ण पक्ष/सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन ग्रीष्म-वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	सोमवार	ज्येष्ठा	8 जून	—
द्वितीया	मंगलवार	मूल	9 जून	—
तृतीया	बुधवार	पू०षा०	10 जून	—
तृतीया	गुरुवार	उ०षा०	11 जून	तृतीया तिथि की वृद्धि, श्रीगणेश चतुर्थी
चतुर्थी	शुक्रवार	श्रवण	12 जून	—
पंचमी	शनिवार	धनिष्ठा	13 जून	पंचक प्रारम्भ 3/3 दिन से
षष्ठी	रविवार	शतभिषा	14 जून	सूर्य मिथुन में, संक्रान्ति दिवस
सप्तमी	सोमवार	शतभिषा	15 जून	पुण्यकाल 10/43 प्रातः तक
अष्टमी	मंगलवार	पू०भाद्र०	16 जून	कालाष्टमी
नवमी	बुधवार	उ०भाद्र०	17 जून	—
दशमी	गुरुवार	रेवती	18 जून	पंचक प्रातः 9/18 पर समाप्त
एकादशी	शुक्रवार	अश्विनी	19 जून	योगिनी एकादशी व्रत (सबका)
द्वादशी	शनिवार	भरणी/कृत्तिका	20 जून	शनि प्रदोषव्रत
त्रयोदशी	रविवार	रोहिणी	21 जून	—
चतुर्दशी	रविवार	रोहिणी	21 जून	चतुर्दशी तिथि का क्षय
अमावस्या	सोमवार	मृगशिरा	22 जून	सोमवती अमावस्या

आषाढ़ शुक्ल पक्ष/सूर्य दक्षिणायन, वर्षा ऋतु

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	व्रत पर्व आदि विवरण
प्रतिपदा	मंगलवार	आर्द्रा	23 जून	चन्द्र दर्शनम्
द्वितीया	बुधवार	पुनर्वसु	24 जून	रथयात्रा जगन्नाथपुरी
तृतीया	गुरुवार	पुष्य	25 जून	—
चतुर्थी	शुक्रवार	श्लेषा	26 जून	श्रीगणेश चतुर्थी व्रत
पंचमी	शनिवार	मघा	27 जून	कुमार षष्ठी व्रत
षष्ठी	रविवार	पू० फा०	28 जून	—
सप्तमी	रविवार	पू० फा०	28 जून	सप्तमी तिथि का क्षय
अष्टमी	सोमवार	उ० फा०	29 जून	श्रीदुर्गाष्टमी
नवमी	मंगलवार	हस्त	30 जून	भडली नवमी
दशमी	बुधवार	चित्रा	1 जुलाई	—
एकादशी	गुरुवार	स्वाति	2 जुलाई	देवशयनी एकादशी व्रत (स्मार्त)
एकादशी	शुक्रवार	विशाखा	3 जुलाई	देवशयनी एकादशी व्रत (वैष्णव)